प्रकाशक —

श्री सेठ छगनमल मुहता,

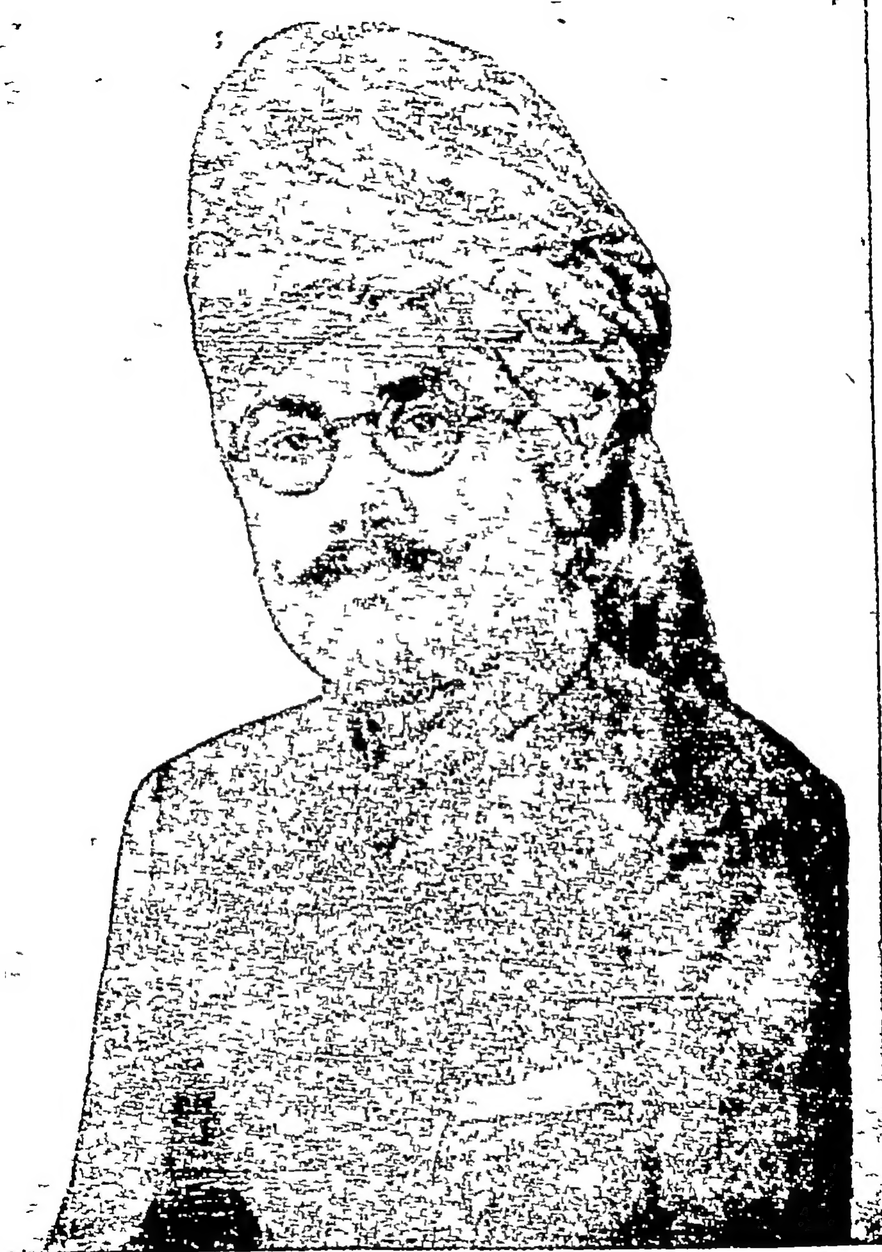
बलन्दा व बेंगलोर।

प्रथमावृत्ति, १००० ।

मुद्रक :—

श्री गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस,

ब्यावर।



श्रीमान दानवीर सेठ छगनमलजी साहब मुहता
बलून्दा व बेंगलोर ।

निवेदन ।

—::()::—

श्रीजवाहरकिरणावली की १७ वी और १८ वीं किरण एक ही साथ उपस्थित करते हुए अत्यानन्द हो रहा है। यह दोनो किरणें बलुन्दा (मारवाड़) निवासी उदारहृदय, दानवीर श्रीमान् सेठ छगनमलजी सा. मुहता के द्रव्य से प्रकाशित हो रही है। इनके विक्रय से जो आय होगी वह पुन. साहित्य के प्रकाशन में ही व्यय की जायगी। इस उदारता के लिए हम श्रीमान् सेठ छगनमलजी सा. के अति आभारी हैं। सच तो यह है कि श्री मुहताजी जैसे मित्रों के सहयोग से ही हम श्री जवाहर-साहित्य के प्रकाशनकार्य को इतना अग्रसर कर सके हैं।

सेठ श्री छगनमलजी सा अपने समाज में सुप्रसिद्ध और लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्ति है। समाज-हित और सार्वजनिक लाभ के लिए आप हजारों रुपये प्रति वर्ष खर्च करते हैं। करीब पचास हजार रुपया वार्षिक व्यय करके आप बलुन्दा, जयतारण, बडी सादड़ी, मेडता, खारची आदि स्थानों में संस्थाएँ चला रहे हैं। इस धनराशि के अतिरिक्त समाज की विभिन्न संस्थाओं को समय-समय पर हजारों रुपयों का उदारतापूर्ण दान दिया करते हैं। पूज्य श्री के परम भक्त, श्रावकों में

आप अन्यतम हैं। स्वर्गीय पूज्य श्री के तत्त्वावधान मे जो श्री सूयगडांगसूत्र तैयार हुआ था, उसके प्रकाशन के निमित्त भी आपने २०००) रुपया प्रदान किया था। वास्तव मे सेठ साहब की उदारता असाधारण है। जैसी उन्हे धन-सम्पत्ति मिली है वैसी ही उनमें गुण-सम्पत्ति भी है। उनकी उदारता और सम्पत्ति मे मानो होड लगी रहती है और कहना कठिन है कि दोनों मे कौन किससे बढ़कर है !

उक्त दोनो किरणें पढ़ने में अत्यन्त रोचक, शिक्षाप्रद और सारगर्भित हैं। जैन-समाज के प्रसिद्ध विद्वान् डा बनारसीदासजी जैन, एम ए, पी-एच डी. ने इन किरणों की भूमिका लिख देने का जो श्रम उठाया है, उसके लिए भी हम आभारी है।

आशा है पाठक इन किरणों का अध्ययन करके पूज्य श्री की वाणी से लाभ उठाएँगे और हमारे श्रम को सफल करेंगे।

निवेदक —

भीनासर
(बीकानेर)
महावीर जयंती,
२४७४.

चम्पालाल बाँठिया,
मंत्री,
श्री जवाहर साहित्य-समिति।



दो शब्द ।

—::()::—

जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के व्याख्यान-साहित्य का कई दृष्टिकोणों, से बड़ा महत्व है । उन्होंने अपनी प्रतिभा के द्वारा जैन तत्त्व के स्वरूप को हृदयगम किया है । अतएव उनके प्रतिपादन में अपूर्वता है । जैन-सिद्धांतो को जीवन-व्यवहार्य रूप देने में आपको जैसी सफलता मिली है, शायद ही किसी ने पाई हो । मुखतया इसी कारण इस साहित्य की ओर मेरा आकर्षण है ।

भारतीय-साहित्य में रामायण और पाण्डव-चरित दोनों महत्व-पूर्ण हैं । एक मे भ्रातृप्रेम का उज्वल आदर्श खड़ा किया गया है और यह बतलाया गया है कि भाई-भाई में स्नेह होने पर किस प्रकार सुख, शाति और समृद्धि बढ़ती है । दूसरे पाण्डव-चरित्र में भाइयों-भाइयों के पारस्परिक विरोध के कारण होने वाले भीषण परिणाम का चित्रण किया गया है । इस प्रकार यह दोनों चरित एक ही वस्तु की आपस में विरोधी दो बाजू उपस्थित करते हैं और एक दूसरे के पूरक हैं । इन कथाओं से हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है । इसी कारण भारत-वर्ष में रामायण और पाण्डव-चरित की कथाएँ बहुत प्रिय और प्रसिद्ध हैं । भारत के सभी मुख्य धर्मों के साहित्य में इन कथाओं को स्थान मिला है ।

श्री जवाहरकिरणावली–सीरीज में यह दोनों कथाएँ प्रकाशित हो रही हैं। यद्यपि आचार्य श्रीने न तो आद्योपान्त्य रामायण–कथा बांची है और न पाण्डव-चरित ही; फिर भी जिन प्रकरणों पर उन्होंने व्याख्यान किये हैं, वे अतिशय उपयोगी हैं।

पाण्डव–चरित दो भागों मे प्रकाशित हो रहा है। इनके प्रकाशन का व्यय विद्यानुरागी, सरलहृदय और उदारचेता सेठ छगनमलजी साहब मुहता ने दिया है। लागत मात्र मूल्य रक्खा गया है और जो आय होगी वह फिर दूसरे साहित्य के प्रकाशन मे ही लगाई जायगी। इस प्रकार सेठ साहब ने अपनी ओर से तो इस रकम की ममता त्याग ही दी है। इस साहित्यानुराग के लिए कितनी सराहना की जाय!

डा. बनारसीदासजी जैन ने प्रस्तावना लिखकर हमे उत्साह प्रदान किया। उन्होंने मुझे जो श्रेय दिया है, मैं उसका अधिकारी नहीं हूं। उसके असली अधिकारी पूज्य श्री हैं। पूज्य श्री के विचार हीरे के समान हैं, उन्हे खराद पर चढ़ा देना, व्यवस्थित कर देना—भाषा के आभूषण में जड़ देना भर मेरा काम है।

पूज्य श्री ने यह प्रवचन करके जैन–शासन की बहुमूल्य सेवा की है। पाठकों से अनुरोध है कि वे इस साहित्य का मनन–चिन्तन करें और अपने जीवन के स्तर को ऊँचा उठावें।

जैन गुरुकुल,
ब्यावर

—शोभाचन्द्र भारिल्ल



प्रस्तावना ।

—::()::—

कौरव-पांडव संघर्ष का भारतवर्ष के इतिहास में अनुपम स्थान है। यह घटना महत्वशाली मार्ग-सूचक चिह्न (Land mark) है जिसका उत्तरकालीन साहित्य और जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस संघर्ष के वर्णन में अनेक कवियों ने अपना कौशल दिखाया। किसी ने इसको उत्तम काव्य का रूप दिया, किसी ने इसे धार्मिक और साम्प्रदायिक रंग में रंगा। ये वर्णन कवि की वैयक्तिक कल्पनाओं से अछूते न रहे थे। यह देख कर व्यासजी ने इन सबको लेकर "महाभारत" नाम से प्रसिद्ध एक विशालकाय ग्रंथ की रचना की। इसका परिमाण एक लाख श्लोक कहा जाता है। इसी कारण से इसका दूसरा नाम "शतसाहस्री" संहिता भी है। जनता की दृष्टि में इस महान् ग्रंथ का आदर इतना बढ़ा कि वह हिन्दू-धर्म का इन्साइक्लोपीडिया या पञ्चम-वेद हो गया।

समय के प्रभाव से महाभारत के कलेवर में न्यूनाधिकता होने लगी, जिसके फलस्वरूप इसके वर्तमान आदर्शों में

भारतवर्ष के [illegible] महाभारत [illegible]
आर्य हों या अनार्य, प्राचीन हों या नवीन, [illegible] भारत में
अनन्य स्थान है। सच पूछा जाय तो भारत के समस्त साहित्य
पर महाभारत की छाप है और वह किसी न किसी रूप में
महाभारत का ऋणी है।

ऐसी दशा में यह बतलाने की जरूरत नहीं कि महा-
रत का भारतीय-जीवन पर कितना निकट का और गहरा
बन्ध है। अभी कुछ महीनों से भारत ने राजनीतिक
त्रता प्राप्त की है। वह अपनी शिक्षा-प्रणाली में उत्कृष्ट
रिवर्तन करने जा रहा है। आशा है कि उसमें महाभारत को

यथोचित स्थान और भाग मिलेगा। महाभारत की कथा संक्षेप रूप से न केवल भारत की प्रत्युत संसार भर की सभी उन्नत भाषाओं में लिखी गई है। हिन्दी में तो ऐसे अनेक प्रयत्न हुए हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी एक ऐसा प्रयत्न है जो जैनाचार्य श्री जवाहरलालजी म के व्याख्यानों के आधार पर जैन-धर्म के मार्मिक विद्वान् और सिद्धहस्त लेखक पं शोभाचन्द्र भारिल्ल द्वारा किया गया है। इसमें कई एक ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसे अत्यन्त सरस और उपयोगी बनाती हैं और इतर लेखकों के लिए एक आदर्श खड़ा करती हैं। इसकी रचना-शैली निहायत सरल है। शब्दों का चुनाव इतना योग्य और सुन्दर है कि जिनको साधारणतया पठित व्यक्ति भी आसानी के साथ समझ सकता है और कथा का पूरा रस ले सकता है। इस पुस्तक की वर्णन-शैली सचमुच बड़ी आकर्षक है। कथनोपकथन द्वारा पंडितजी अपने पात्रों के मानस-तल तक पहुँच जाते हैं और मानो उन्हें ऊपर लाकर पाठकों को साक्षात् नङ्गा करके दिखा देते हैं। अपने कथन की पुष्टि और समाधान में उत्तरकालीन और वर्त्तमान युग के उदाहरणों का भी प्रयोग किया गया है।

मुझे यह कहने तनिक भी संकोच नहीं कि पण्डितजी ने अपनी इस कृति से हिन्दी-ससार पर असाधारण उपकार किया है। इससे हिन्दी-साहित्य की उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। मुझे आशा है कि हिन्दी-संसार भी इसका समुचित

आदर करेगा जिससे पण्डितजी को प्रोत्साहन मिलेगा और वे अपनी ऐसी ही रचनाओं से पाठकों को सदा आनंदित करते रहेंगे।

बनारसीदास जैन, एम. ए., पी-एच डी.

चौक तकिया गूजरान
लुधियाना.



रीडर-इन-हिन्दी,
पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर.
(रिटायर्ड)



-: पाण्डव-चरित :-

१

विषय-प्रवेश

——::::()::::——

शास्त्रों के चार अनुयोग हैं। उनमें चरितानुयोग का स्थान सामान्य जनता के लिहाज़ से महत्वपूर्ण है। सर्वसाधारण जनता के लिए चरितानुयोग जितना उपयोगी है, इतने दूसरे अनुयोग नहीं। चरितानुयोग के द्वारा गहन तत्त्व सरलता के साथ जनता के सामने रक्खा जा सकता है। उसे समझने में विशेष कठिनाई नहीं होती। जो गहन बात दूसरी रीति से समझाना कठिन होता है वही बात अगर चरित द्वारा समझाई जाय तो सहज ही समझ में आ जाती है। चरितानुयोग की शैली अन्य अनुयोगों की अपेक्षा सरस, मधुर और आकर्षक होती है। यही कारण है कि जनता नीरस तत्त्व-विवेचना की अपेक्षा चरित-वर्णन को बड़े चाव से सुनने को उत्कंठित रहती है।

किसी बालक को रंग की डिबिया दिखाकर यह समझाया जाय कि इस रंग में हाथी है, तो इस कथन को बालक नहीं समझ सकेगा। लेकिन रंग से अगर हाथी का चित्र बनाकर उसे दिखा दिया जाय तो वह समझ जाएगा। इसी प्रकार कथा की मूल भूत-भावरूप वस्तु-को कथा का रूप दे देने से वह बाल जीवों के लिए सुगम हो जाती है। इस प्रकार कथा कहने का प्रधान उद्देश्य तो उस भावरूप वस्तु को समझाना है, मगर उसे समझाने के लिए कथा का स्थूल रूप देना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जैसे चित्र के खाके मे रंग भरा जाता है।

यद्यपि भावरूप वस्तु में कथानक का रंग समयानुसार भरा जाता है फिर भी वह रंग भावरूप वस्तु की वास्तविक मर्यादा को लांघ कर नहीं भरा जा सकता। मर्यादा का उल्लंघन करने से भाव-वस्तु विकृत हो जाती है। चित्र बनाने और रंग भरने के लिए जो रेखाएँ खींची गई हैं, उनसे बाहर रंग न चला जाय, इस बात की कुशल चित्रकार बड़ी सावधानी रखता है। इसी प्रकार कथाकार को भी ध्यान रखना चाहिए कि भाव-वस्तु में समय के अनुकूल रंग भरते समय वह रंग उस रेखा के बाहर ना निकल जाए। तात्पर्य यह है कि पहले से खिंची हुई रेखाओं में समयानुकूल रंग भर देना ही कथाकार का कर्त्तव्य है। अतएव कथा कहते समय मुझे भी यह ध्यान रखना है कि मेरे द्वारा पूर्व निर्दिष्ट रेखा का उल्लंघन न हो पर समयानुकूल रंग भरा जाए।



ब्रह्मचर्य की महिमा

——::::()::::——

हस्तिनापुर नगर मनोहर जन-मन-रंजनहार,
कौरव-कुल-नभ चन्द्र समान है शान्तनु नृप सुखकार।
गंगा महारानी के अंगज हैं श्री गांगेय कुमारजी,
सब मिल जय बोलो ब्रह्मव्रतधारी भीष्म की ॥१॥

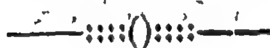
आज संसार में जिस ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है, आधुनिक वैज्ञानिक भी जिसके बल के मुकाबिले में दूसरा कोई बल नहीं मानते, जिसकी शक्ति कल्पना से अतीत और तर्क के अगोचर है, जिसका प्रभाव अद्भुत है, जिसका चमत्कार अपूर्व है और जिसकी महिमा अपरिमित है, जो ब्रह्मानन्द का दाता है, आध्यात्मिक तेज उत्पन्न करने वाला है, जीवन का सौन्दर्य है और जिसके बिना शारीरिक, मानसिक और वाचनिक शक्तियाँ सोई पड़ी रहती हैं; जो इस शरीर का जीवन है, इस जीवन का प्राण है, प्राणों की आत्मा है, आत्मा का सर्वस्व है और सर्वस्व का सार है, उस ब्रह्मचर्य का वर्णन किन

किसी बालक को रंग की डिबिया दिखाकर यह समझाया जाय कि इस रंग में हाथी है, तो इस कथन को बालक नहीं समझ सकेगा। लेकिन रंग से अगर हाथी का चित्र बनाकर उसे दिखा दिया जाय तो वह समझ जाएगा। इसी प्रकार कथा की मूल भूत-भावरूप वस्तु-को कथा का रूप दे देने से वह बाल जीवों के लिए सुगम हो जाती है। इस प्रकार कथा कहने का प्रधान उद्देश्य तो उस भावरूप वस्तु को समझाना है, मगर उसे समझाने के लिए कथा का स्थूल रूप देना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जैसे चित्र के खाके में रंग भरा जाता है।

यद्यपि भावरूप वस्तु में कथानक का रंग समयानुसार भरा जाता है फिर भी वह रंग भावरूप वस्तु की वास्तविक मर्यादा को लांघ कर नहीं भरा जा सकता। मर्यादा का उल्लंघन करने से भाव-वस्तु विकृत हो जाती है। चित्र बनाने और रंग भरने के लिए जो रेखाएँ खींची गई हैं, उनसे बाहर रंग न चला जाय, इस बात की कुशल चित्रकार बड़ी सावधानी रखता है। इसी प्रकार कथाकार को भी ध्यान रखना चाहिए कि भाव-वस्तु में समय के अनुकूल रंग भरते समय वह रंग उस रेखा के बाहर न निकल जाए। तात्पर्य यह है कि पहले से खिंची हुई रेखाओं में समयानुकूल रंग भर देना ही कथाकार का कर्त्तव्य है। अतएव कथा कहते समय मुझे भी यह ध्यान रखना है कि मेरे द्वारा पूर्व निर्दिष्ट रेखा का उल्लंघन न हो पर समयानुकूल रंग भरा जाए।



ब्रह्मचर्य की माहिमा



हस्तिनापुर नगर मनोहर जन-मन-रंजनहार,
कौरव-कुल-नभ चन्द्र समान है शान्तनु नृप सुखकार।
गंगा महारानी के अंगज हैं श्री गांगेय कुमारजी,
सब मिल जय बोलो ब्रह्मव्रतधारी भीष्म की ॥१॥

आज संसार में जिस ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है, आधुनिक वैज्ञानिक भी जिसके बल के मुकाबिले में दूसरा कोई बल नहीं मानते, जिसकी शक्ति कल्पना से अतीत और तर्क के अगोचर है, जिसका प्रभाव अद्भुत है, जिसका चमत्कार अपूर्व है और जिसकी महिमा अपरिमित है, जो ब्रह्मानन्द का दाता है, आध्यात्मिक तेज उत्पन्न करने वाला है, जीवन का सौन्दर्य है और जिसके बिना शारीरिक, मानसिक और वाचनिक शक्तियाँ सोई पड़ी रहती हैं; जो इस शरीर का जीवन है, इस जीवन का प्राण है, प्राणों की आत्मा है, आत्मा का सर्वस्व है और सर्वस्व का सार है, उस ब्रह्मचर्य का वर्णन किन

शब्दों में किया जाय ? वास्तव में ब्रह्मचर्य की पूर्ण महिमा का गान नहीं किया जा सकता। शास्त्र में कहा है—

देवदाणवगंधव्वा जक्ख-रक्खसकिन्नरा।
बंभयारिं नमंसंति दुक्करं जं करंति ते ॥
—श्री उत्तराध्ययन।

अर्थात्—देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर—सभी प्रकार के देवता भी ब्रह्मचारी के सामने झुक जाते हैं।

जब देवता भी ब्रह्मचारी पुरुष के चरणों पर लोटते हैं तो मनुष्यों का कहना ही क्या है ? ब्रह्मचर्य में ऐसी अलौकिक शक्ति होती है कि समस्त प्रकृति उसकी दासी बन जाती है, समस्त शक्तियाँ उसके हाथ का खिलौना बन जाती हैं, सिद्धियाँ उसकी अनुचरी हो जाती हैं और ऋद्धियाँ उसके पीछे-पीछे दौड़ती फिरती हैं।

जिस ब्रह्मचर्य की ऐसी महिमा है, उसका लक्षण क्या है ? आज ब्रह्मचर्य का प्रायः संकीर्ण अर्थ किया जाता है। स्त्री-संसर्ग न करना ही ब्रह्मचर्य है, यह तो एक संकीर्ण परिभाषा है। ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक है। जिसके सहारे यह विश्व टिका हुआ है, उस ब्रह्मचर्य का अर्थ इतना संकुचित नहीं हो सकता। वस्तुतः ब्रह्मचर्य का पालन स्त्री के साथ रहकर भी किया जा सकता है। और ब्रह्मचर्य का विनाश स्त्री के अभाव में भी किया जा सकता है। इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि ब्रह्मचर्य के लिए

आवश्यक मर्यादा का, जिसे वाड़ भी कहते हैं—पालन न किया जाय। बल्कि इस कथन का आशय यह है कि ब्रह्मचर्य का अर्थ स्त्रीसंसर्ग के त्याग में ही सीमित नहीं है वरन् उससे भी अधिक व्यापक है। ब्रह्मचर्य के लिए शास्त्र में वाड़ आदि रूप जिस मर्यादा का वर्णन किया गया है, उसका पालन तो करना ही चाहिए। मगर ऐसा करना उचित नहीं है कि केवल वाड़ की रक्षा की जाय और खेत उजड़ जाने दिया जाय! अर्थात् ब्रह्मचर्य की बाह्य मर्यादा का तो ख्याल रक्खा जाय और ब्रह्मचर्य नष्ट होने दिया जाए। डिबिया हीरा की रक्षा करने के लिए है। हीरा की रक्षा के उद्देश्य से ही डिबिया की रक्षा की जाती है। डिबिया की रक्षा करने वाला और हीरा को गँवा देने वाला विवेकवान् नहीं कहला सकता। समय पड़ने पर डिबिया अलग कर दी जाती है लेकिन हीरे की तो सर्वदा रक्षा ही की जाती है। समय आ पड़ने पर गौण बात छोड़ी जा सकती है पर मुख्य का त्याग नहीं किया जा सकता।

सती सीता घोर संकट में पड़ गई थी। रावण जैसे प्रचंड पराक्रमशाली राजा ने उसे सतीत्व से विचलित करने के लिए कोई प्रयत्न न छोड़ा। लेकिन सीता ने अपने सतीत्व का परित्याग नहीं किया। रावण के लाख प्रयत्न करने पर भी वह विचलित नहीं हुई।

मैंने एक चित्र देखा था। उसमें राम, लक्ष्मण, सीता और रावण की बहिन सूर्पणखा के चित्र थे। सूर्पणखा अपने चरित्र

से पतित होकर लक्ष्मण को शृंगारिक हाव-भाव दिखलाती हुई लक्ष्मण को भी पतित करने का प्रयत्न कर रही थी। उस वन में लक्ष्मण के लिए कौन-सी वाड़ थी? जङ्गल में एकांत स्थान था। सामने सुन्दरी का रूप धारण किये सूर्पनखा खड़ी थी। वहाँ अकेला हीरा था, वाड़ रूपी डिबिया नहीं थी। फिर भी क्या लक्ष्मण तिल भर भी विचलित हुए थे? जैसे हीरा की छोटी-सी कणी बड़े-बड़े काँचों को काट डालती है, उसी प्रकार लक्ष्मण ने अपने चरित्र की रक्षा की और जैसे बड़े काँच हीरा की कणी का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, इसी प्रकार सूर्पनखा के हाव-भाव लक्ष्मण के चरित का कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। सारांश यह है कि मर्यादा का पालन तो करना ही चाहिए, परन्तु मुख्यतः यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि जिस हीरे की रक्षा के लिए मर्यादा का पालन किया जाता है, वह हीरा ही कहीं नष्ट न हो जाए।

आज भारतवर्ष में भी ब्रह्मचर्य संकट में पड़ा हुआ है। स्वार्थी लोगों ने भाँति-भाँति की दवाएँ खोज कर और संततिनियमन के कृत्रिम उपायों का आविष्कार करके ब्रह्मचर्य पर भीषण प्रहार किया है। आज ब्रह्मचर्य की मर्यादा किस प्रकार नष्ट की जा रही है, यह बात प्रत्येक बुद्धिमान् जानता है।

समय में भीष्म जैसे ब्रह्मचारी की जय बोलने की शक्ति किस है? भीष्म की जय बोलने का वास्तविक अधिकारी वही है जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो या कम से कम देशविरत ब्रह्मचारी

हो। जिसके समीप ब्रह्मचर्य का कोई मूल्य ही नही है वह भीष्म की जल बोलने का अधिकारी कैसे हो सकता है ?

भीष्म अखण्ड, नैष्ठिक या पूर्ण ब्रह्मचारी थे। भारत के प्राचीन महापुरुषों में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। मगर जिस देश में भीष्म सरीखे महान् ब्रह्मचारी हुए हैं, उस देश की आज क्या दशा है ? उस देश का वातावरण कितना गँदला हो रहा है ! लोग किस प्रकार कुमार्ग पर चल रहे हैं ? भीष्म की सन्तान होने का गर्व करने वाले आज किस भीषण विनाश-पथ पर अग्रसर होते जा रहे हैं ? हे भारत ! तेरे मस्तक पर बहुत बड़ा बोझ है। तुझे संसार को मार्ग दिखलाना है। अगर तू ही सन्मार्ग पर नहीं चलेगा और अंधों की तरह भटक जायगा तो संसार को सन्मार्ग कौन सुझाएगा ? सावधान होकर अपने पूर्वजों के उज्ज्वल चरित को देख ! अपने पितामह का स्मरण कर ! सँभल और संसार को सँभाल !

इस युग में भीष्म सरीखे महापुरुषों के जीवनचरित से प्रेरणा पाने की बहुत आवश्यकता है। इसलिए मै ब्रह्मचारी भीष्म की कथा कहना चाहता हूँ।





शान्तनु का विवाह

——::::()::::——

हस्तिनापुर नामक एक नगर था। यों तो हस्तिनापुर अभी मेरठ के पास है, पर कहा जाता है कि प्राचीन हस्तिपुर वहाँ था; जहाँ आज दिल्ली नगर बसा हुआ है। मगर धर्मकथा को इतिहास की दृष्टि से देखने की आवश्यकता नहीं है। धर्मकथा इतिहास प्रकट करने के लिए नहीं, धर्म को प्रकाशित करने के लिए होती है। अतएव यहाँ ऐतिहासिक गवेषणा में न पड़कर तात्त्विक बातों पर ही ध्यान दिया जायगा। धर्मकथा आचरण बनाने का नक्शा है। हम धर्मकथा द्वारा जनता के जीवन को उन्नत बनाना चाहते हैं। अतएव इतिहास सुनने की आशा न रखते हुए धर्मकथा सुनने की इच्छा से ही आप मेरा वक्तव्य सुनें।

कहा जाता है कि भगवान् ऋषभदेव के सौ पुत्रों में से . . का नाम कुरु था। उन कुरु के वंशज ही कौरव कहलाए। कहीं-कहीं यह उल्लेख मिलता है कि भगवान् ऋषभदेव के

पौत्र (बाहुबली के पुत्र) राजा सोमभद्र और श्रेयांस के वंश में कुरु राजा हुए और उनकी सन्तान-परम्परा कौरव कहलाई। कुरुवंश में बड़े-बड़े प्रतापी पुरुषों ने जन्म लिया है। भगवान् शांतिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ इसी वंश की विमल विभूतियाँ हैं। सनत्कुमार चक्रवर्ती, महापद्म चक्रवर्त्ती तथा अनेक इतिहास-पुराण-प्रसिद्ध राजाओं और महर्षियों ने कुरुवंश को देदीप्यमान किया है। इस प्रतापशाली वंश के सैकड़ों राजा धर्मपरायण हुए और उनमें से अनेकों ने मुक्ति प्राप्त की है। कहा भी है—

शत्रपुश्यामभूनाभि-सूनो' सूनुः कुरुर्नृपः।
कुरुक्षेत्रमिति ख्यातं राष्ट्रमेतत्तदाख्यया॥
कुरोः पुत्रोऽभवद्दस्ती तदुपज्ञमिदं पुरम्।
हस्तिनापुरमित्याहु-रनेकाश्चर्यसेवितम् ॥

अर्थात्—भगवान् ऋषभदेव के सौ पुत्रों में से एक का नाम कुरु था। कुरु को जिस प्रदेश का राज्य दिया गया था, वह प्रदेश कुरुक्षेत्र कहलाया। कुरु राजा का पुत्र हस्ती हुआ। इस राजा हस्ती के नाम पर हस्तिनापुर नगर कहलाया। हस्तिनापुर में अनेक आश्चर्य प्रकट हुए।

हस्ती राजा के वंश में एक अत्यन्त पराक्रमी और चन्द्रमा के भाँति शांति देने वाले शान्तनु नामक राजा हुए। शान्तनु की गंगा नाम की महारानी से ही भीष्म का जन्म हुआ था।

भीष्म महारानी गंगा के पुत्र थे। इसी कारण उन्हें गांगेय

भी कहते हैं। गंगा के साथ शान्तनु का विवाह किस प्रकार हुआ था; यह आगे कहा जायगा। यहाँ इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि दूसरे ग्रंथों में शान्तनु के विवाह का आलंकारिक वर्णन किया गया है, लेकिन उस आलंकारिक वर्णन का विकृत अर्थ किया जाता है। इन सब बातों पर विस्तारपूर्वक विवेचन किया जाय तो काफी समय लग सकता है। वह वर्णन बहुत विस्तृत भी होगा। अतएव उसे छोड़कर सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त है कि ग्रंथों के आलंकारिक वर्णन का विकृत अर्थ करने से कथा में अन्तर जान पड़ता है। अगर उस विकृति को अलग कर दिया जाय तो कथा की विषमता हट जाएगी और मूल वस्तु एक-सी प्रतीत होने लगेगी। वास्तविक बात यह है कि जह्नु नामक एक राजा थे। शान्तनु की रानी गंगा इन्हीं राजा जन्हु की पुत्री थी। इस लिए गंगा का दूसरा नाम जाह्नवी भी पड़ा, जैसे जनक की पुत्री होने के कारण सीता का दूसरा नाम जानकी था। इसी गंगा या जाह्नवी के साथ राजा शान्तनु का विवाह हुआ था।

राजा शान्तनु का जन्म श्रेष्ठ कुल में हुआ था। कुलक्रम से उन्हें अच्छे संस्कार प्राप्त हुए थे। उनमें अनेक सद्गुण थे। लेकिन जैसे चन्द्रमा में भी कलंक होता है उसी प्रकार शान्तनु में भी एक मृगया (शिकार) का दुर्व्यसन था।

शिकार खेलना और निरपराध मूक प्राणियों का घात करना बुरा है। कोई भी विवेकशील पुरुष शिकार जैसे कार्य

का समर्थन नहीं कर सकता। लेकिन ज्ञानी जन प्रत्येक बात में समभाव रखते है। उनका कथन है कि आस्रव भी संवर के रूप में पलट सकता है और संवर के कार्य से भी आस्रव हो सकता है। शास्त्र में कहा है:—

जे आसवा ते परिसवा,
जे परिसवा ते आसवा।

—श्री आचारांग सूत्र, प्र० श्रु०।

उदाहरण के लिए संयति राजा के वृत्तान्त को देखिए। वह मृगया करने गया था और उसने मृग पर बाण भी चलाया था। मगर उस मृग के निमित्त से ही वह गर्दभिल्ल (गर्दभाली) मुनि के पास जा पहुँचा। अतएव किस निमित्त से क्या होगा, यह नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि ज्ञानी जन प्रत्येक बात में समभाव रखते हैं। ऐसी अचिन्तनीय बातों को दृष्टिगोचर रखकर ही कहा गया है—

न जाने संसारे किममृतमय कि विषमयम् ?

अर्थात्—कौन जाने,संसार में क्या अमृतमय है और क्या विषमय है ?

संयति राजा मृगया के लिए गया था। वहीं मुनि के साथ उसकी भेंट हो गई। यह क्या बुरा हुआ ? यों देखा जाय तो मृगया करना बुरा ही है, मगर मृगया के कारण मुनि से जो भेंट हो गई, उस भेट को कौन बुरा कहेगा ? इसलिए ज्ञानी जन परिणाम की ओर देखते हैं और प्रत्येक कार्य में समभाव

धारण करते है।

वनक्रीडा को जाते राय ने,
मृग-दम्पति को पाय।
मृग के पीछे छोड़ा अश्व को,
दया न मन के मांय।
घोर जंगल में पहुँचा राजा,
मृग की छिप गई काय।
सब मिल जय बोलो गंगानन्दन श्री भीष्म की !

राजा शान्तनु को मृगया का बड़ा शौक था। एक दिन वह महावेगवान् अश्व पर सवार होकर अपने साथियों के साथ मृगया के लिए वन की ओर चल पड़ा।

यद्यपि मृगया हिंसा-कार्य है, तथापि देखना चाहिए कि इसका क्या परिणाम हुआ? किसी बात की बिना सोचे-समझे आलोचना करना उचित नहीं है। कदाचित् शान्तनु की बात कथानक की कही जा सकती है परन्तु संयति राजा की बात तो आगम में भी आई है। शास्त्र में संयति राजा का वर्णन करते हुए कहा है—

हयाणीए गयाणीए रहाणीए तहेव य।
पायताणीए महया सव्वओ परिवारिए ॥२॥
मीए छुहित्ता हयगओ कंपिलुज्जाणकेसरे।
भीए सन्ते मिए तत्थ वहेइ रसमुच्छिए ॥३॥उ०अ० १८

इस प्रकार शास्त्र में कहा है कि संयति राजा चतुरंगिनी

सेना लेकर मृगया के लिए गया था। कहा जा सकता है कि धर्मकथा में मृगया के वर्णन की क्या आवश्यकता है? ऐसा कहने वाले को यही उत्तर दिया जा सकता है कि प्रत्येक बात पर समभाव से विचार करना चाहिए और प्रत्येक वस्तु के यथायोग्य स्वरूप को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

आज जैनधर्म का अनुयायी कोई राजा नहीं रहा। इसके अन्यान्य कारणों के साथ एक प्रधान कारण जैनों की संकुचित मनोवृत्ति भी है। आजकल का जैन समाज सीमातीत असहनशील बन गया है। वह शास्त्रों के विषय में अपनी ही दृष्टि को सर्वोपरि मानने लगा है। जैनशास्त्र को यह मान्य नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति सैद्धांतिक बातों को अपनी दृष्टि से देखे या माने। जैनशास्त्र का कथन है कि हिंसा के स्थान पर हिंसा और अहिंसा के स्थान पर अहिंसा समझो। यह हठ-बुद्धि छोड़ दो कि जो हम कहते हैं वही होना चाहिए, दूसरा क्यों होता है? संसार में स्वर्ग भी है, नरक भी है। पाप भी है, पुण्य भी है। आप अपनी हठ-बुद्धि से इनमें से किसी को नहीं मिटा सकते। शास्त्र पाप-पुण्य धर्म-अधर्म सभी का वर्णन करता है। आप स्वयं अधिक से अधिक पाप से बचें, लेकिन सहसा किसी बात की आलोचना न करने बैठें। सम-भाव रखकर प्रत्येक बात के स्वरूप और परिणाम पर विचार करें।

राजा शान्तनु शिकार खेलने के लिए वन को गया। वह

सोचता होगा कि लोग शिकार की निन्दा करते हैं, लेकिन शिकार करना मेरे लिए आनन्द की बात है! इससे मन को प्रसन्नता होती है, बल और साहस की वृद्धि होती है। राजा मानों यही सोच रहा था कि इतने ही में उसकी दृष्टि एक मृग-युगल पर पड़ी।

कवियों का कथन है कि नर-जाति की अपेक्षा नारी-जाति में अधिक सौन्दर्य होता है। इसी कारण मृग की अपेक्षा मृगी अधिक सुन्दर समझी जाती है। यों तो स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में रूप की कमी नहीं होती लेकिन पुरुष मोहवश मानने लगते हैं कि रूप स्त्रियों में ही है! मगर विचारणीय यह है कि जो पुरुष, स्त्रियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है वह स्त्रियों से कम रूपवान् कैसे हो सकता है? जो हो, शायद सौन्दर्य की हीनता या अधिकता की कोई निश्चित तराजू नहीं है। जिसकी जैसी दृष्टि होती है, वैसी ही सृष्टि उसे दिखाई देने लगती है।

मृग का जोड़ा देखकर राजा सोचने लगा—'मै नगर का रहने वाला वन में भटक रहा हूँ, लेकिन वन में रहने वाले वन में ही रहते हैं। ऐसी दशा में इन वनचरों के प्रति नागरिक का क्या कर्त्तव्य है? फिर मै साधारण नागरिक ही नहीं राजा हूँ, जिस पर प्रजा की रक्षा का भार है।'

राजा को यह विचार आया मगर शिकार के आवेश में वह क्षण भर से ज्यादा नहीं टिका। दूसरी ओर मृग के जोड़े

ने भी राजा को देखा। मृग, मृगी और राजा के बीच में हो गया। मानो वह अपने ऊपर संकट झेल कर भी मृगी की रक्षा करना चाहता था और प्रकट करना चाहता था कि कौन है ऐसा जो हमारे निर्दोष जोड़े को भंग कर सके! राजा ने भी मृग का यह कार्य देखा। राजा ने मृग का कार्य देखकर सोचा—स्नेह की भावना केवल हम मनुष्यों में ही नहीं है वरन् जङ्गल में स्वच्छंद विचरने वाले पशुओं में भी यह भाव पाया जाता है। इसी स्नेह-भावना से प्रेरित होकर मृग, मृगी को बचाना चाहता है। लेकिन मैं ऐसा नहीं कि इस सुन्दर जोड़े को छोड़ दूँ।

राजा ने मृग का पीछा करने के लिए अपना घोड़ा छोड़ दिया। मृग लम्बी-लम्बी छलांगें भरता हुआ तेजी से भागा। राजा ने उसका पीछा किया। उसने धनुष पर बाण चढ़ाकर ज्यों ही मृग पर छोड़ने का उपक्रम किया कि मृग आँखों से ओझल हो गया। राजा यह देखकर चकित रह गया। मृग अभी-अभी मेरी आँखों के सामने था और अभी-अभी कहाँ गायब हो गया? इस प्रकार मेरे सामने से मृग का निकल जाना और विलीन हो जाना मेरी हार है! मगर शान्तनु हरिण से हार जाने वाला नहीं है। आखिर वह जाएगा कहाँ?

इस प्रकार सोचकर राजा मृग का पता लगाने को उद्यत हुआ। घोड़े पर चढ़े-चढ़े पता लगाने में कठिनाई होगी, यह सोचकर वह नीचे उतर पड़ा। वह मृग को नज़र फैलाकर

इधर-उधर देखने लगा। राजा को मृग के चिह्न तो दिखाई पड़ते थे, मगर मृग कहीं दिखाई नहीं देता था। राजा बड़े असमंजस में पड़ गया। वह सोचने लगा—आज तक तो ऐसा कभी हुआ नहीं था। यह पहला ही अवसर है कि शिकार धोखा देकर चम्पत हो गया और मैं देखता ही रह गया!

राजा गया तो था शिकार खेलने, लेकिन देखना चाहिए कि वहाँ अकस्मात् क्या घटना घटती है। ऐसी बातों को दृष्टि में रखकर ही कहा गया है कि आस्रव के स्थान पर भी संवर हो सकता है और संवर के स्थान पर भी आस्रव हो सकता है, लेकिन ज्ञानी पुरुष को तो समभाव ही रखना चाहिए। राजा संयति को शिकार खेलने के लिए जाने पर मुनि का समागम हुआ था, परन्तु शान्तनु के विषय में दूसरी ही घटना घटती है।

अश्व से नीचे उतरे राजा भटके जंगल माँय।
सुन्दर रंगमहल इक देखा मन को अति लोभाय॥
राजा को ले चली दासियाँ गंगा पासे आय।
सब मिल जय बोलो ब्रह्मव्रत धारी भीष्म की॥

शिकार का कार्य आस्रव का अर्थात् कर्मबंध का है। लेकिन कौन जानता है कि इस निमित्त से भी कभी कोई अच्छा काम हो सकता है? इसी कारण वस्तु पर अनेकान्त दृष्टि से विचार किया जाता है।

राजा शान्तनु घोड़े से उतर कर मृग को खोजने के लिए टीले पर चढ़ा। उसी समय उसे एक सुन्दर महल दिखाई

दिया ! महल को देखकर राजा सोचने लगा—इस वन में और ऐसा सुन्दर महल ? यह कहाँ से आया ? किसका यह महल होगा ? महल सूना नहीं जान पड़ता। इसमें कोई रहता मालूम होता है। इस घोर वन में महल का दिखाई देना मेरे छोटे-से त्याग का ही फल है। अगर मैंने घोड़े का त्याग न किया होता तो यह महल देखने को कैसे मिलता ? घोड़ा छोड़े विना इस टीले पर चढ़ ही कैसे सकता था ?

वास्तव में घोड़ा भी एक प्रकार का वन्धन है। कल्पना कीजिए, एक आदमी घोड़े को पकड़कर उस पर सवार होकर चला। आगे उसके मित्र का घर आया। मित्र घोड़े-सवार को बुला रहा है और सवार को भी अपने मित्र के घर जाना पसंद है। ऐसी स्थिति में घोड़े की सवारी त्याग कर ही वह मित्र के घर जा सकता है। जब तक वह घोड़े पर सवार रहेगा, घर में प्रवेश नहीं कर सकेगा। अब देखना चाहिए कि उसने घोड़े को पकड़ा है या घोड़े ने उसे पकड़ रक्खा है ?

राजा सोचता है—इस महल का नजर आना त्याग का ही फल है। साथ ही मृग का भी उपकार हुआ कि वह मुझे इस ओर ले आया। इस प्रकार मन ही मन अनेक बातें सोचता-विचारता राजा शान्तनु उस महल के समीप पहुँचा। उसे स्त्रियों का एक झुंड मिला। सब स्त्रियाँ 'महाराज ! पधारिए, स्वागत है' कहकर राजा का अभिवादन करने लगीं। उन्होंने कहा—'हम आपकी प्रतीक्षा में ही खड़ी थीं।

अच्छा हुआ, आप पधार गए।

राजा भौंचक्का रह गया! सोचने लगा—इनसे मेरी कोई जान-पहिचान मालूम नहीं होती। इधर मै पहले कभी आया भी नहीं। मेरे आगमन की पहले कोई सूचना भी इन्हें नहीं थी। फिर भी यह मेरी प्रतीक्षा में खड़ी हैं! यह कैसा आश्चर्य है।

राजा ने अपने आपको सँभाल कर कहा—आप मेरी शुभचिंतिका हैं। इसीलिए ऐसा कहती हैं।

स्त्रियों मे से एक ने कहा—आप जैसों के लिए संसार में सभी सज्जन है। दुर्जन कौन हो सकता है?

आखिर वह स्त्रियाँ राजा को साथ लेकर महल में दाखिल हुई। महल में राजा जह्नु की कुमारी गंगा बैठी थी। सुन्दरी गंगा को देख कर राजा को बहुत विस्मय हुआ। उस समय तक राजा अविवाहित था।

प्राचीन काल में आज की भाँति बालविवाह नहीं होते थे। विवाह उस समय माता-पिता की हवस पूरी करने का साधन नहीं था। जब सोते हुए नव अग जागृत हो जाते थे, तभी उस समय विवाह होता था।

महाराज शान्तनु गंगाकुमारी की असाधारण रूपराशि देखकर चकित रह गया। वह ज्यों ही गंगा की ओर अग्र-

हुआ कि गंगा ने उठकर राजा का स्वागत किया। यथोचित आसन दिया। राजा आसन पर बैठ गया। तदनन्तर

शान्तनु ने किंचित् शान्त-चित्त होकर गंगा से कहा—'आपका रूप और स्वभाव वहुत ही आनन्ददायक है। लेकिन मैं समझ नहीं सका कि आप कौन हैं? किस कारण इस वीहड़ वन में वास कर रही है? कोई हानि न हो तो वतलाइए कि आपके माता-पिता कौन हैं?'

राजा का प्रश्न सुनकर गंगा सोचने लगी—'मैं अपने मुख से अपना वृत्तान्त कैसे सुनाऊँ?' यह सोचकर गंगा ने अपनी धाय की ओर संकेत किया।

संकेत से भी बात समझी जाती है। स्वामी-सेवक तथा गुरु-शिष्य में इंगित-चेष्टा से ही बात समझ ली जाती है। वल्कि श्रेष्ठ शिष्य वही है जो इंगित से ही गुरु का अभिप्राय समझ जाए। गंगा के संकेत को उसकी धाय-माता समझ गई।

पूछा राय ने कहा धाय ने गंगाचरित उदार।
गिरि वैताढ्य रत्नपुरी का जह्नु राय गुणधार॥
उनकी पुत्री है यह राजा इसका यह निरधार।
सब मिल जय बोलो ब्रह्मव्रतधारी भीष्म की॥
विद्याकला में पूरी प्रवीणा सरस्वती सम जान।
स्वतंत्रता की है उपासिका नहीं स्वच्छंदी वान॥
स्वकृत व्रत के पालन में यह करें जान कुर्बान।
सब . ... भीष्म की॥
व्याह योग्य जब हुई बाल तब पूछा पिता ने आय।
करें व्याह तब योग्य पति से जिससे सब सुख पाय॥

परतंत्रता मे सुनो पिताजी सुख का नहीं उपाय।
सब · · · · · भीष्म की ॥
एक प्रतिज्ञा करी है मैने जो है अति सुखरूप।
जो मेरी आज्ञा मे रहेगा वह नर मम अनुरूप ॥
ब्रह्मचर्य को पाल अन्यथा बन जाऊँगी अनूप।
सब ··· · · भीष्म की ॥
सुनके बात कन्या की राय ने खोज करी भरपूर।
सुनके प्रतिज्ञा राजकुंवर सब रह जाते हैं दूर ॥
चिंतित रहने लगे पिता जब मिला न कोई नूर।
सब भीष्म की ॥
पिता दुःख का कारण मैं हूं छोड यहाँ का वास।
जंगल मे जाकर के रहूं तो न हो पिता को त्रास ॥
वनदेवी सम वन में रहकर पाले प्रतिज्ञा खास।
सब · · · भीष्म की ॥
मेरी आज्ञा को जो माने वह मेरा भरतार।
इस निश्चय को सुन कर कोई वर नहीं हुआ तैयार ॥
इस कारण यह वन मे रहकर पाले प्रतिज्ञा सार।
सब मिल भीष्म की ॥
मन मुग्ध भा रूपमुग्ध हो बोला यों राजान—
आज्ञाकित मैं सदा रहूँगा सुन लो मेरी बात ॥
पति रूप मे मुझे स्वीकारो छोडो अपनी तान।
सब · · 'भीष्म की ॥

धाय ने राजा की ओर उन्मुख होकर कहा—वैताढ्य पर्वत पर रत्नपुर नामक एक नगर है। वहा के राजा का नाम जह्नु है। आपके सामने विराजमान कुमारी गंगा उन्हीं राजा जह्नु की कन्या हैं।

महाराज जह्नु ने पुत्र और पुत्री में भेद न करके इन्हें यथोचित सभी कलाए सिखलाई हैं। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने विचार किया—स्वतंत्रता में ही आत्मा को सुख प्राप्त हो सकता है और कहा जाता है कि स्त्रियों का जीवन पराधीन है। ऐसी दशा में स्त्री होने के कारण ही मुझे क्या स्वाधीनता के सुख से वंचित रहना पड़ेगा ? नहीं, मै पराधीनता स्वीकार नही करूँगी। चाहे कितने ही कष्टों का सामना क्यों न करना पड़े, मगर मै अपनी स्वतत्रता का परित्याग नही करूँगी। मै अपनी अन्य बहिनों को भी स्वतंत्र बनाने का प्रयत्न करूंगी।

जब कुमारी गंगा की उम्र विवाह के योग्य हो गई तो महाराज जहनु ने एक दिन इनसे कहा—पुत्री ! कन्या जीवन भर पिता के घर नहीं रह सकती। उसे विवाहित होकर पति के घर जाना पड़ता है। तुम्हे भी ऐसा करना होगा। लेकिन मे जानना चाहता हूँ कि तुम कैसा पति चाहती हो ?

पिता का प्रश्न सुनकर पहले तो गंगा सकुचाई। फिर सोचा—इस तरह संकोच करने से कैसे काम चलेगा ? मन का भाव प्रकट न करने से अनिष्ट होने की ही संभावना है।

इस प्रकार विचार कर गंगा कुमारी ने पिता से कहा—पिताजी! आपने ही मुझे शिक्षा दी है और मै यह बात भलीभाँति समझ गई हूँ कि प्रत्येक आत्मा को स्वतंत्र रहने का अधिकार है। फिर यह प्रश्न करके क्या आप मुझे पराधीनता की वेड़ी पहनाना चाहते हैं? जब आपने प्रश्न किया ही है तो उसका उत्तर मुझे देना पड़ेगा। मेरा उत्तर यह है कि प्रथम तो ऐसा पति होना चाहिए जिसे पाकर मै कभी विधवा ही न बन सकूँ। अगर ऐसा पति न मिले तो मै ऐसे पुरुष के साथ विवाह करना चाहती हूँ जो मेरी आज्ञा का पालन करे, मेरे कथन का उल्लंघन न करे और कदाचित् उल्लंघन करे, तो उसका और मेरा संबंध-विच्छेद हो जाय।

गंगा का यह कथन सुनकर महाराज ने सोचा—गंगा इतनी सुन्दरी है कि इसकी समता करने वाली दूसरी कन्या दुर्लभ है। अतएव कोई राजकुमार इसकी आज्ञा में रहने को अवश्य तैयार हो जायगा। यह सोचकर महाराज ने कहा—अगर तुम्हारी इच्छा के अनुकूल पुरुष मिल जाय तब तो विवाह करने में आनाकानी नहीं करोगी?

इस प्रश्न से उत्तर में गंगा चुप रही। महाराज ने सोचा-'मौनं सम्मतिलक्षणम्।' अर्थात् मौन रह जाना सहमत होने का लक्षण है।

इस प्रकार निश्चित करके महाराज जह्नु ने अनेक राज-ारों को आमंत्रित किया। राजकुमार आये और गंगा को

देखकर मुग्ध भी हुए। मगर गंगा की प्रतिज्ञा किसी ने स्वीकार नहीं की। जो आया उसी ने कहा—'हम अपने पुरुपत्व की उपेक्षा करके राजकुमारी के अधीन किस प्रकार रह सकते हैं? हम उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकते। और आज्ञा पालन न करने की अवस्था में वह हमें त्याग कर चली जाएँ, इससे अच्छा तो यही है कि हम पहले ही यह शर्त स्वीकार न करें।' इस तरह कह कर सभी राजकुमार लौट गए।

किसी राजकुमार को गंगा के साथ विवाह करने को तैयार होते न देखकर राजा को बहुत चिंता हुई। वह मन ही मन सोचने लगे—गंगा की प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो रही और वह सियानी हो गई। युवती गंगा को घर में रखना निन्दा का कारण है।' इस प्रकार राजा सदैव चिन्ता में डूबे रहते।

गंगा को अपने पिता की चिन्ता और व्याकुलता का पता लगा। यद्यपि उसे अपने विवाह की परवाह नहीं थी, वह आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने के लिए तैयार थी और इतनी तैयारी होने पर ही उसने यह प्रतिज्ञा की थी, मगर अपने कारण पिता को चिन्तित देखकर उसे बहुत खेद हुआ। किसी उपाय से उसने पिता की चिन्ता कम करने की बात सोची। एक दिन अवसर पाकर गंगा ने महाराज जह्नु से कहा—

गंगा—पिताजी ! मेरी इच्छा अब वन-वास करने की है। आपकी आज्ञा हो तो मै वन में ही रहना चाहती हूँ।

जह्नु राजा गंगा की ओर से अकुलाए हुए थे। फिर भी उन्होंने ऊपर के मन से कहा—'जंगल में भीलनी और किराती रहती हैं। तू राजकुमारी है। जंगल में कैसे रहेगी ? तुम राजमहल में रही हो और राजमहल में ही रहने योग्य हो। जंगल में रहना तुमसे नहीं बनेगा। क्या कोई राजा तुम्हारे योग्य नहीं है ? या तुम किसी राजा के योग्य नहीं हो जिससे वन-वास करना चाहती हो ?

गंगा—मै किसी को दोष नहीं देना चाहती। मै अपने ही लिए कहती हूँ कि मै स्वयं किसी राजा के योग्य नहीं हूँ। पुरुष, स्त्रियों पर शासन करते आ रहे हैं, अब भी कर रहे हैं। सभी स्त्रियाँ पुरुषों के अधीन हैं। सभी पुरुष स्त्रियों को अपने अधीन किये बैठे हैं। पुरुष-समाज में इतनी उदारता नहीं है कि वह एक भी स्त्री को स्वाधीन रहने दे। वह एक भी स्त्री के शासन को सहन नहीं कर सकता। अतएव जब कोई भी पुरुष मेरी शर्त स्वीकार करने को तैयार नहीं है तो मै अपनी आत्मा को ही क्यों न अपने वश में करूँ ? मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसमें किसी प्रकार के अहंकार की प्रेरणा नहीं है। वह आवेश से प्रेरित होकर भी नहीं की गई है। मै [illegible]-जाति में जागृति उत्पन्न करना चाहती हूँ। मै नारियों [illegible] उनके स्वत्व का बोध कराना चाहती हूँ। मेरी प्रतिज्ञा के

पीछे मेरा दृढ़ संकल्प है, उत्सर्ग के लिए पूर्ण उद्यतता है। इस प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए मैं सभी कुछ त्यागने को तैयार हूँ—संसार के आमोद-प्रमोद और भोग-विलास मुझे विचलित नहीं कर सकते। मैंने पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की तैयारी करके ही यह प्रतिज्ञा की है। मैं हँसती हुई समस्त आपदाओं का सामना करूँगी और पुरुष जाति के पुरुषार्थ पर नारी जाति की प्रबल संकल्पशक्ति की मोहर लगाऊँगी।'

पिताजी! आप मेरे विषय में व्यर्थ चिन्तित होते हैं। अतीत काल की अनेकानेक ब्रह्मचारिणी सतियों का आदर्श जिसके सामने प्रस्तुत हो, उसके लिए चिन्ता की बात ही क्या है?

गंगा के उत्तर में न उद्दंडता है, न आवेश है, न चंचलता है, वरन् गंभीरता, दीर्घदृष्टि, संकल्प की अटलता और त्याग की प्रबल भावना है। यह देखकर राजा जह्नु को आश्वासन मिला। उन्होंने गंगा के वन-वास के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उन्होंने उसके लिए जो महल बनवा दिया था वही यह महल है, जिसमें आप इस समय विराजमान हैं। और यही वह राजकुमारी गंगा हैं, जो आपके सामने बैठी हैं। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वर न मिलने के कारण इन्हें न किसी प्रकार की चिन्ता ही है और न कोई मनस्ताप ही है। यह प्रसन्नता और संतोष के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करती हैं।

एक बार महाराज जह्नु यहाँ पधारे थे। वह कहते थे कि एक निमित्तज्ञानीने यह बतलाया है कि हस्तिनापुरके राजा शान्तनु मृग का पीछा करते हुए इस वन में आएँगे। और वे गंगा की प्रतिज्ञा मान कर उसके साथ विवाह करेंगे। हम सब तभी से आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं। अब सौभाग्य से आप पधारे हैं। जो आपको उचित लगे, वह कीजिए।

शान्तनु बड़ा राजा था। उसे एक से एक बढ़कर सुन्दरी राजकन्याएँ प्राप्त हो सकती थीं। बड़े से बड़े राजा की कुमारी भी शान्तनु को पाकर अपने को धन्य मानती। ऐसी स्थिति में क्या वह स्त्री के अधीन रहने की प्रतिज्ञा कर सकता था? लेकिन शान्तनु ने गंगा में कौन जाने क्या देखा? उसने न मालूम क्या सोचा? और वह गंगा की प्रतिज्ञा अस्वीकार न कर सका।

गंगा में ब्रह्मचर्य का असाधारण प्रताप था। प्रथम तो वह जन्मजात सुन्दरी थी ही, फिर ब्रह्मचर्य ने उसके सौन्दर्य में एक विचित्र प्रकार की तेजस्विता उत्पन्न कर दी थी। इस तेजस्विता के संयोग से गंगा का सौन्दर्य अनुपम हो गया था जो राजमहल के विलासपूर्ण वातावरण में कभी संभव नहीं है।

आगे चलकर भीष्म इतने बलवान् और ब्रह्मचारी हो सके; इसका कारण भी उनकी माता—गंगा—का ब्रह्मचर्य था। माता के ब्रह्मचर्य से भी बालक बलवान् होता है। हनु-

मानजी की माता अजना ने जो ब्रह्मचर्य पाला था, उसके फल-स्वरूप ही हनुमान जैसे बलवान् पुत्र का जन्म हुआ था। सभी लोग अपनी संतति का बलवान् होना पसंद करते हैं, दुर्बल और निर्वीर्यसंतान कोई नहीं चाहता। लेकिन उसके लिए आवश्यक ब्रह्मचर्य पालने को कौन तैयार होता है? भोग के कीड़े सिंह पैदा नहीं कर सकते। जिन्हें सच-मुच सबल और वीर्यवान् संतान की कामना हो, उन्हें ब्रह्म-चर्य का समुचित पालन करना चाहिए।

राजा शान्तनु के अन्तःकरण में उस समय क्या भाव उत्पन्न हुआ, यह कहना कठिन है। संभव है वह सौन्दर्य के मोह में पड़ गया हो। सम्भव है, उसने यह सोचा हो—'गंगा ने जो प्रतिज्ञा की है, उसके कारण इसे इतने समय तक कुंआरी रहना पड़ा है। ब्रह्मचर्यमय जीवन बिताते हुए इसने अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी। अतएव यह विषय-विकार को जीतने वाली है। ऐसी देवी अगर मेरे महल में रहे और मुझे इसकी आज्ञा में भी रहना पड़े तो हानि क्या है? यह तो बल्कि अच्छा ही होगा।'

इस प्रकार निश्चय करके शान्तनु ने मुस्किराते हुए कहा—'मैं राजकुमारी की आज्ञा में रहना स्वीकार करता हूँ।'

धायकी प्रसन्नता का पार न रहा। उसने हँसते हुए कहा—'लो देवी! अब तो आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई?'

गंगा—धाय मां! प्रतिज्ञा करना सरल है किन्तु पालना

कठिन होता है। उस हालत में तो प्रतिज्ञा का पालना और भी कठिन हो जाता है जब कि वह हृदय से न की गई हो, किन्तु अपना मतलब निकालने के लिए की गई हो। महाराज रूप में तो मुग्ध नहीं हो गए हैं?

मेरे मोह में पड़कर राजा कहते हो यह बात,
यदि न मानी मम आज्ञा तो छोड़ूंगी मैं साथ।
अपने प्रण को पूर्ण जानकर लग्न किया साक्षात ॥
सब ...... भीष्म की।
नैमित्तिक से जान बात सब आये जन्हु महाराज,
सत्कारित हो शान्तनु राजा गंगा लाये राज।
बड़ी उमग से किया महोत्सव तब रानी के काज ॥
सब . भीष्म की।

गंगा दूरदर्शिनी थी। उसने राजा की प्रतिज्ञा सुनकर राजा से कहा—महाराज, मेरी धृष्टता को क्षमा करें। विवाह थोड़ी देर का सौदा नहीं है। वह जीवन भर का पवित्र गठ-बंधन है। विवाह के बाद पति-पत्नी पर एक गंभीर उत्तर-दायित्व आ पड़ता है। अतएव विवाह से पहले ही सब बातें स्पष्ट हो जानी चाहिए। मैं सोचती हूँ कि आप कहीं मेरे रूप पर मोहित होकर ही तो यह प्रतिज्ञा नहीं कर रहे हैं? आप जैसे प्रतापशाली नरेश अन्यथा क्यों पत्नी के वश में ... स्वीकार कर रहे हैं? अनेक सुन्दरियाँ आपकी रानी ...ने की अभिलाषा रखती होंगी। फिर भी आप पत्नी के

अधीन रहने की प्रतिज्ञा कर रहे हैं। यही मेरी शंका का कारण है। मैं चाहती हूँ, आप अपनी प्रतिज्ञा के विषय में फिर एक बार विचार कर लें। यह आप निश्चय समझ लें कि जिस दिन आपकी यह प्रतिज्ञा भंग होगी उसी दिन मैं राज-महल त्याग कर चल दूँगी।'

प्रायः पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अपने वचन की पक्की होती हैं। पुरुष बोलते भी देर नहीं करते और बदलते भी देर नहीं करते।

गंगा का कथन सुनकर राजा विचारने लगा—गंगा कितनी निस्पृह और कितनी दृढ़ है। उसकी दृढ़ता से प्रकट है कि वह विषयभोग की कीट नहीं है। इसी कारण वह अपनी प्रतिज्ञा के लिए पति को त्यागने की बात कहती हैं पर प्रतिज्ञा को नहीं त्यागना चाहती।

राजा ने प्रकट में कहा—राजकुमारी, इसमें तो संदेह नहीं कि मैं तुम्हारे सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ हूँ। तुम्हारा शारीरिक सौन्दर्य असाधारण है, यह तो साफ दिखाई दे रहा है। पर शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा भी एक विशिष्ट सौन्दर्य तुम्हारे अन्तःकरण में है, जिसे मैं देख सका हूँ। बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा तुम्हारा आन्तरिक सौन्दर्य ही मुझे अधिक मुग्ध बना रहा है। मैं असली और नकली सौन्दर्य की पहिचान जानता हूँ। असली सौन्दर्य अन्तर से उत्पन्न होता है और वह अन्त-रंग तथा बहिरंग को प्रकाशमान बना देता है। बाह्य सौन्दर्य

में यह विशेषता नहीं होती। इसलिए यह सच है कि मैं तुम्हारे सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ हूँ, लेकिन उस में मेरा अपराध क्या है? अगर किसी का अपराध हो भी तो वह तुम्हारे सौन्दर्य का ही हो सकता है। राजकुमारी! मैंने जो प्रतिज्ञा की है उसमें किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं है, वह मतलब निकालने की चाल नहीं है, उसमें विषय-वासना की प्रधानता नहीं है। मैंने हृदय से प्रतिज्ञा की है। मेरु चाहे डिग जाए मगर मैं अपनी प्रतिज्ञा से नहीं डिग सकता।

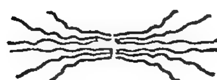
इतने में राजा जह्नु भी अचानक वहाँ आ पहुँचे। दूसरी ओर शान्तनु के अन्य साथी भी आगये। जह्नु राजा ने सब वृत्तान्त सुना और अपना निर्णय दे दिया कि गंगा की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई है। उन्होंने गंगा की सम्मति ली और महाराज शान्तनु के साथ विवाह-विधि संपन्न हुई।

गंगा को पाकर शान्तनु बहुत प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा- उस मृग ने मेरा बड़ा उपकार किया है, जो मुझे इस ओर ले आया। लोग कहने लगते हैं, यह बुरा हुआ, वह बुरा हुआ; परन्तु क्या बुरा है और क्या भला है, यह कहना इतना आसान नहीं है। किस बुराई में कौन-सी अच्छाई छिपी हुई है, यह जान लेना बड़ा कठिन है। जो होता है सो भले के लिए ही होता है, यह लोकोक्ति एकदम मिथ्या नहीं है। उस ग के भाग जाने की बदौलत मुझे मृगाक्षी गंगा की प्राप्ति ई। अब मेरे लिए यह उचित होगा कि मैंने जो वचन

है, उसका पूर्ण रूप से पालन करूँ।

राजा शान्तनु पत्नी के वश में रहने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहता है, इस पर आप विचार करें। आप स्त्री से पतिव्रत पलवाना चाहते हैं, पर कभी यह भी सोचा है कि स्त्री के लिए पतिव्रत धर्म है तो पुरुष के लिए पत्नीव्रत भी धर्म कहा गया है। पति अगर स्वामी है तो पत्नी क्या स्वामिनी नहीं है? पति अगर मालिक कहलाता है तो पत्नी क्या मालकिन नहीं कहलाती? ऐसी दशा में पत्नी के प्रति आपका क्या कर्त्तव्य है और आपको किस प्रकार पत्नीव्रत का पालन करना चाहिए? इन प्रश्नों पर आप शांत चित्त से विचार कीजिए।

पति और पत्नी में से किसे किसके अधीन रहना चाहिए इस संबंध में कोई एकान्त निर्णय नहीं किया जा सकता। पति और पत्नी का दर्जा बराबर है तथापि दोनों में जो अधिक बुद्धिमान् हो उसकी आज्ञा कम बुद्धिमान् को मानना चाहिए। ऐसा करने से ही गृहस्थी में सुख-शांति कायम रह सकती है।





पावन प्रतिज्ञा

——::::()::::——

जैसे मेघ विद्युत् से शोभा पाता है उसी तरह राजा शान्तनु गंगा के साथ शोभा पाने लगे। शान्तनु के साथी वर-वधू को हाथी पर सवार कर हस्तिनापुर लाये। हस्तिनापुर में सर्वत्र राजा शान्तनु के विवाह की चर्चा होने लगी। जितने मुँह उतनी बाते ! कोई कहता—'महाराज को क्या सूझा कि एक वनवासिनी से विवाह कर लिया !' कोई कहता—'महाराज का ही नहीं, हम सब का भी अहोभाग्य समझना चाहिए कि हमें गंगा देवी सरीखी तपस्या करने वाली रानी प्राप्त हुई है ! ऐसी पवित्रात्मा के योग से प्रजा में भी सुख और शांति बढ़ेगी।'

कोई कहता—'भाई और तो सब ठीक है, लेकिन महाराज का विवाह जङ्गल में हो गया, यही ठीक नहीं हुआ। हम लोग विवाह के उत्सव को देखना चाहते थे, सो हमारी चाह ही रह गई !'

कोई उत्तर देता हुआ कहता—'तुम उत्सव के लिए ही रो रहे हो, मगर महाराज और महारानी की ऊँची भावना को क्यों नहीं देखते ! जब महाराज ने भी वन में विवाह-संस्कार कर लिया तो प्रजा पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? यही न कि सादगी से और विना आडम्बर ही ऐसे कार्य कर लेने चाहिए।'

राजा शान्तनु का यह वन-लग्न आजकल की विवाह की वृथा व्यय वाली पद्धति पर क्या प्रकाश डालता है, यह विचारणीय बात है। आज विवाहों में जो खर्च किया जाता है, उसके कारण समाज के अधिकांश लोगों को अत्यन्त कठिनाई उठानी पड़ती है। उनके लिए शादी बर्बादी बनी हुई है। अधिकांश लोग इतने तंग हो जाते हैं कि उनके यहाँ 'जान' क्या आती है मानों उनकी 'जान' निकलने लगती है। राजा शान्तनु एक बड़ा राजा था, फिर भी उसने सादगी के साथ शादी की थी। लेकिन आज आपका काम अंगरेजी बाजों के विना नहीं चल सकता ! इस प्रकार की खर्चीली पद्धति के कारण समाज की बड़ी हानि हो रही है।

राजा शान्तनु शिकार खेलने गया था। वह न बरात सजाकर ले गया था और न विवाह के लिए बहुमूल्य सामग्री साथ ले गया था। अतएव उसका विवाह कितनी सादगी से संपन्न हुआ होगा ! और विवाह करने में कितनी देर लगी होगी ? राजा के इस विवाह के साथ आजकल के विवाहों

लादने के समय कितना शान्त रहता है? ऐसी दशा में बुरा काम करने वाला आदमी गधे के समान भी कैसे रहा?

शान्तनु के साथ रहती हुई गंगा शान्तनु के चरित्र का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगी। पत्नी दूसरों के कहने से ही पति के चरित्र को अच्छा या बुरा नहीं मान लेती है; वरन् वह स्वयं उसके चरित्र का अभ्यास करती है। गंगा भी अपने पति के चरित्र का अभ्यास करने लगी। वह सोचती थी कि मेरे सौभाग्य से ही मुझे ऐसे पति मिले हैं, मगर मेरे और इनके सहयोग से कोई विशेष अच्छा कार्य होना चाहिए। अभ्यास करते-करते उसे मालूम हुआ कि पति में अनेक गुणों के साथ एक दुर्गुण भी है और किसी प्रकार उसे दूर करना चाहिए। वह मृगया का अवगुण है, जो अन्य गुणों के साथ शोभा नहीं देता। अगर किसी तरह वह दूर हो जाय तो बहुत कल्याणकारी होगा।

इस प्रकार विचार कर और अवसर देखकर वह शान्तनु के पास गई और नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। शान्तनु ने उससे कहा—कहो, क्या इच्छा है?

निर अपराधी वनपशुओं का मृगया खेलन काज।
करते हो तुम घात राय यह मुझे है आती लाज॥
कहा रानी ने करो प्रतिज्ञा सजू न मृगया-साज।
सच ....भीष्म की॥

शान्तनु के प्रश्न के उत्तर में गंगा ने कहा—'महाराज!

मेरी इच्छा तो यह है कि मै अपनी इच्छा पर ही विजय प्राप्त करूँ; किन्तु अभी तक ऐसी शक्ति मुझे प्राप्त नहीं हो सकी है। एक बात कई दिनों से मेरे दिमाग में घूम रही है। आज आपके सन्मुख रखना चाहती हूँ। मेरी समझ में यह नहीं आता कि जङ्गल के निरपराध पशुओं ने आपका क्या विगाड़ किया है, जिससे आप उन पर चढ़ाई कर देते हैं ? वे मुँह में तृण दबाये रहते है फिर भी आप उन्हें मार डालते हैं, ऐसा उनका क्या अक्षम्य अपराध है ? वड़े से बड़ा अपराध करने वाला भी अगर तृण मुँह से दबा लेता है तो उसे क्षमा किया जाता है। ऐसी दशा में मृगों के वध का क्या कारण है ? आप जैसे न्यायनिष्ठ महान् नृपति के लिए यह अन्याय शोभा नहीं देता। आत्मा जैसे मनुष्य में है वैसे ही पशुओं में भी है। फिर क्या कारण है कि हमारे सद्व्यवहार की, नीति की और शिष्टाचार की सीमा मानव-जाति तक ही समाप्त हो जाए ? क्यों न वह पशु-पक्षी एवं कीट-पतङ्ग तक भी फैले ?'

गंगा का भावपूर्ण कथन सुनकर राजा बोले—'देवी तुम भावुक हो। होना ही चाहिए, क्योंकि भावुकता स्त्रीजाति का सहज गुण है। मगर भावुकता से पुरुषों का काम नहीं चल सकता। उनमें यथोचित निष्ठुरता भी चाहिए। विशेषतः राजाओं में तो उसका होना आवश्यक भी माना जाता है। कीड़ी और कुंजर में भी आत्मा की समानता प्रकट करके ...ने दर्शनशास्त्र की अभिज्ञता प्रकट की है, मगर मेरा प्रत्यक्ष

संबन्ध राजनीतिशास्त्र से है। जहाँ दोनों शास्त्र एक दूसरे के विरुद्ध हों वहाँ राजा का क्या कर्त्तव्य होगा ? वह दर्शनशास्त्र पर आँख मूँदकर विचार करेगा अथवा राजनीतिशास्त्र का अनुसरण करके अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा ?

गंगा—नाथ ! स्त्रीजाति का सहज गुण होने के कारण ही भावुकता क्या पुरुष-जाति के लिए अवगुण सिद्ध हो सकता है ? भावुकता हृदय की एक संवेदनाशील वृत्ति है। हृदय क्या स्त्रियों में ही होता है ? पुरुषों में नहीं होता ? या उन्हें हृदयहीन होना चाहिए ? स्त्री और पुरुष में मौलिक अतर न होने के कारण एक का गुण दूसरे का अवगुण नहीं बन सकता। रहीं निष्ठुरता की बात, सो शासन-मार्ग में कभी-कभी निष्ठुर कार्य करना पड़ता होगा, फिर भी निष्ठुरता की आवश्यकता नहीं हो सकता है।

शान्तनु—क्या कहती हो ! निष्ठुरता के बिना ही निष्ठुर कार्य हो सकता है ?

गंगा—जी हाँ, यही तो कह रही हूँ। चिकित्सक जब ऑपरेशन करता है तो ऊपर से ऐसा जान पड़ता है, मानो वह कसाई को मात कर रहा हो। मगर उसके हृदय में भी क्या निष्ठुरता होती है ? निष्ठुर कार्य करते हुए भी चिकित्सक का हृदय तनिक भी निष्ठुर नहीं होता। यही बात शासन-कार्य के सम्बन्ध में कही जा सकती है।

शान्तनु—देवी ! तुम फिर दर्शन शास्त्र की गहराई में

उतर रही हो !

गंगा--सो तो उतरना ही पड़ेगा। बिना दर्शन शास्त्र के मनुष्य-समाज अंधा नहीं हो जाएगा ? दर्शनशास्त्र मनुष्य-समाज का पथ-दर्शक है। दर्शनशास्त्र को मानव जीवन से जुदा नहीं किया जा सकता। आप जिस राजनीतिशास्त्र का उल्लेख करते हैं, वह क्या है ? वह दर्शन का ही एक अंग तो है। ऐसी स्थिति में दोनों का विरोध जहाँ दिखाई पड़ता हो, वहाँ समन्वय-बुद्धि का अभाव समझना चाहिए। विरोध के विष का मंथन करके, उसमें से अमृत निकालने की कला हमें सीखनी होगी। इस कला के अभाव में ही अनेक विरोधाभास विरोध बनकर हमारी बुद्धि को विकृत एवं भ्रान्त बना देते हैं। संसार के इतने मत-मतान्तर किस बुनियाद पर खड़े हैं ? इनकी बुनियाद है सिर्फ समन्वय-बुद्धि का अभाव। अगर हम विभिन्न दृष्टिकोणों में से सत्य का स्वरूप देखने की क्षमता प्राप्त कर लें तो जगत् के एकान्तवाद तत्काल विलीन हो जाएँगे। और वह विलीन होकर भी नष्ट नहीं हो जाएँगे वरन् एक अखंड और विराट सत्य को साकार बना जाएँगे। नदियाँ जब असीम सागर में विलीन होती हैं तो वह नष्ट नहीं हो जातीं, वरन् सागर का रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार एक दूसरे से अलग-अलग प्रतीत होने वाले दृष्टिकोण मिलकर विराट सत्य का निर्माण करते हैं। शास्त्रों में सत्य को भगवान् कहा है और भगवान् की स्तुति में यह

कहा गया है—

उदधाविव सर्वसिन्धव' समुदीर्णास्त्वयि नाथ ! दृष्टयः ।

अर्थात्—हे नाथ ! जैसे समुद्र में समस्त नदियाँ मिल जाती हैं, उसी प्रकार तुममें सब दृष्टियाँ—दृष्टिकोण—समाविष्ट हो जाते हैं।

इससे स्पष्ट है कि उचित समन्वय के यंत्र में ढल कर जब विरोध मालूम होने वाले—पर जो वास्तव में विरोध हैं नहीं—विचार एक दूसरे के साथ मिलते हैं तभी सम्पूर्ण-परिपूर्ण सत्य का ठीक स्वरूप बनता है। दर्शनशास्त्र और राजनीतिशास्त्र के विरोध को भी हम इस प्रकार दूर कर सकते हैं। पर जाने दीजिए, इस गहराई में हम न उतरें। हम अपनी मूल बात पर ही आजाते हैं।

मै आपसे शिकार के विषय में निवेदन कर रही थी। इस विषय में तो राजनीति और दर्शन का कोई विरोध भी नहीं है। राजनीति शिकार का समर्थन नहीं करती। ऐसी स्थिति में दोनों के विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता।

शान्तनु—देवी ! आखिर यह पशु किस काम के हैं ? मै वन में जाकर और उन निरर्थक पशुओं को मारकर अपनी वीरता जागृत करता हूँ, अपना स्वास्थ्य अच्छा रखता हूँ और बल बढ़ाता हूँ। इसलिए शिकार खेलने में कोई दोष नहीं है।

गंगा—महाराज ! कौन जीवधारी किस का

निरर्थक है, इसका निर्णय करना सरल नहीं है। मनुष्यों के लिए अगर मृग निरर्थक हैं तो मृगों के लिए क्या मनुष्य निरर्थक नहीं हैं? निरर्थकता और सार्थकता की कसौटी मनुष्य का स्वार्थ होना उचित नहीं है। मानवीय स्वार्थ की कसौटी पर किसी की निरर्थकता का निर्णय नहीं किया जा सकता। मृग प्रकृति की शोभा हैं। उन्हें जीवित रहने का उतना ही अधिकार है जितना मनुष्य को। क्या समग्र विश्व का पट्टा किसी ने मनुष्य-जाति के नाम लिख दिया? अगर नहीं तो जङ्गली पशुओं को सुख-चैन से क्यों न रहने दिया जाय।

आप कहते हैं कि पशुओं को मारने से वीरता जागृत होती है। मैं नम्रतापूर्वक यह जानना चाहती हूँ कि वीर पुरुष की वीरता का उपयोग क्या है? अगर वीरता निर्बलों और असहायों की सहायता के लिए नहीं बल्कि संहार के लिए है तो ऐसी वीरता जगाने से वीरता न जगाना ही अधिक उचित है। सत्पुरुषों की वीरता रक्षा में हैं, प्राणियों के संहार में नहीं। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य रक्षा की बात भी आपने कही है। पर स्वास्थ्यरक्षा के उचित उपाय दूसरे बहुत हैं। अपने मनोरंजन के लिए दूसरों के प्राण लेना उचित नहीं कहा जा सकता। यह क्रम बहुत खतरनाक भी है। कभी प्रजा पर भी यह क्रम आ पड़ेगा।'

किसी कवि ने मृग की ओर से कहा है—

पदे पदे सन्ति भटा रणोत्सुका।
न तेषु हिंसारस एष पूर्यते ॥

धिगीदृशं ते नृपते ! कुविक्रमं।
कृपायते यः कृपणे मृगे मयि ॥

अर्थात्–हे महाराजा ! युद्ध के लिए उत्सुक योद्धा आपको पद-पद पर मिल सकते हैं। उन पर अपना हिंसा करने का शौक पूरा कर लीजिए। मगर हम जैसे लाचार मृगों पर अपना पराक्रम दिखलाना धिक्कार के योग्य है। ऐसा पराक्रम कुपराक्रम है।

आप लोग भी एक प्रकार से राजा हैं। आपके अधीन जो पशु और मनुष्य रहते हैं, उन पर आपका अधिकार है। आप क्या उन पर दया करते हैं ? घर में गाय भूखी बँधी रहे, उसे समय पर खाना-पीना न दिया जाय या पर्याप्त खाना-पीना न दिया जाय तो कौन पाप का भागी होगा ? शास्त्र में कहा है कि भोज़न-पानी का विच्छेद करना पाप है। तो क्या आपको यह पाप नहीं लगेगा ? इसी प्रकार किसी पर शक्ति से अधिक बोझा लादना भी पाप है। अगर पशु पर अधिक भार लादना पाप है तो मनुष्य पर अधिक बोझ लादना क्या पाप नहीं है ? फिर भी क्या आप अपने नौकरों के विषय में यह विचार रखते हैं ? उन पर काम का ज्यादा बोझा तो नहीं डालते ? सुना है कि कलकत्ता में मुनीमों पर कार्य का बोझ इतना अधिक रहता है कि उन्हें कठिनाई से चार-पाँच घन्टा सोने का समय मिलता है। जब उन्हें बहुत ज्यादा नींद सताने लगती है तो वहीं के वहीं

गद्दी पर लुढ़क रहते हैं और फिर जल्दी उठ बैठते हैं। क्या यह पाप नहीं है? नौकरों से इस प्रकार अधिक काम लेना सर्वथा अनुचित है।

कल्पना कीजिए, किसी गाड़ी में दो बछड़े जुते हुए हैं। आप रास्ते में पैदल चल रहे हैं। गाड़ीवान ने आप से कहा- आप पैदल क्यों चलते हैं? गाड़ी में आकर बैठ जाइए। गाड़ीवान किसी कारण से ऐसा कहता है लेकिन उस समय आप क्या सोचेंगे? क्या आप यह नहीं सोचेंगे कि गाड़ी में छोटे-छोटे बछड़े जुते हैं। उन पर पहले ही पूरा बोझ लदा है। फिर मैं कैसे बैठ जाऊँ? धर्मशास्त्र तो अतिभार लादने को पाप कहता ही है, लेकिन आजकल का सरकारी कानून भी उसे अपराध मानता है। इसीलिए सरकार ने नियम बनाया है कि तांगे में तीन या चार से ज्यादा मनुष्य न बैठें। ऐसा होते हुए भी जिस तांगे में पहले ही चार आदमी बैठे हों, उस तांगे का मालिक आपको बिना किराया लिए अगर बैठने को कहे तो आप क्या करेंगे? क्या उस समय आप यह सोचेंगे कि यह कौन-सी सरकार देखने बैठती है? अगर कोई देख भी लेगा तो निपट लेंगे! पकड़ा जाएगा तो तांगे वाला पकड़ा जायगा। हमारा कोई क्या बिगाड़ लेगा? अगर आप इस प्रकार सोचकर तांगे में बैठ गए तो पाप आपको लगेगा या नहीं? कदाचित् सरकारी जुर्म से बच भी गये तो क्या पाप भी बच जाएँगे? सच्चा श्रावक सदैव इस बात का विचार

रक्खेगा और इस प्रकार कभी तांगे में नहीं बैठगा। यही नहीं, बल्कि ज्यादा बैठने वालों को भी वह मना करेगा।

और गाड़ी में छोटे बछड़ों को जोतने के समान ही बाल-विवाह करना भी पाप है या नहीं ? अपरिपक्व उम्र के बालक और बालिका पर विवाह का बोझ लाद देना क्या उचित कहा जा सकता है ? जहाँ ऐसे बच्चे गाड़ी में जोते गये हों, उस गाड़ी में बैठना अर्थात् उस विवाह में सम्मिलित होकर लड्डू खाना क्या योग्य है ?

बालक किसे माना जाय, यह विवादग्रस्त बात हो सकती है। गांधीजी ने तो यहाँ तक लिखा है कि यदि लड़की का विवाह चौदह वर्ष से कम उम्र में हुआ है तो वह विवाह, विवाह ही न माना जाय और ऐसी विधवा को विधवा ही न समझा जाय। अगर मै भी ऐसा कहूँ तो क्या आप मानेंगे ? इसलिए इस बारीकी में न उतर कर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ऐसी गाड़ी में बैठना पाप है।

गंगा कहती है—नाथ ! आप बेचारे पशुओं को मारते हैं पर उनका क्या अपराध है ? आप उन पर दया कीजिए। उन्हें मारिये मत। कदाचित् आप यह सोचें कि लम्बे समय की आदत पड़ी हुई है। परन्तु मै निवेदन करती हूँ कि आप जैसे प्रजा के स्वामी हैं उसी प्रकार अपनी आदतों के भी स्वामी हैं। मै आपसे याचना करती हूँ कि आप मृगया न किया करें।

महारानी गंगा का कथन राजा शान्तनु को युक्ति-

युक्त लगा। उन्होंने यह भी विचार किया कि गंगा को माँगने का अधिकार है। मै उसकी आज्ञा मानने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हूँ। इस प्रकार सोचकर राजा ने कहा—'ठीक है, मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि मै आज से मृगया नहीं करूँगा। आज से मै निरपराध जीवों का घात नहीं करूँगा। अपराधी को मारने के विषय में तो तुम कुछ कहती ही नहीं हो, इसलिए उनकी बात अलग है।





भीष्म का जन्म

——::::()::::——

गंगा की प्रेरणा से शान्तनु ने किसी भी निरअपराध जीव की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा की। महाभारत में कहा है कि शान्तनु राजा के राज्य में कोई पशु-पक्षियों की भी हिंसा नहीं करता था। यद्यपि शान्तनु को पहले मृगया का व्यसन था, लेकिन गंगा की प्रेरणा से उसने इस व्यसन का त्याग कर दिया था और वह जीवों का रक्षक बन गया था। इस प्रतिज्ञा के कारण शान्तनु मानों कलंक से मुक्त हो गया। वह ऐसा जान पड़ने लगा जैसे राहु के ग्रहण के बाद चन्द्रमा प्रकाशित हुआ हो। उसकी कीर्ति चारों ओर ऐसी फैल गई जैसे चन्द्रमा का प्रकाश चारों ओर फैल जाता है। लोग कहने लगे—हमें अभी तक अर्थ और काम ही सुखदायक मालूम पड़ते थे मगर राजा शान्तनु को देखने से समझ में आया है कि अर्थ और काम तो अनर्थ के मूल हैं। असली सुख देने वाला तो धर्म ही है।

जब किसी मनुष्य मे सुबुद्धि जागृत होती है तो वह अर्थ और काम को हीन समझने लगता है और धर्म का कभी अपमान नहीं होने देता। पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज कहा करते थे कि अगर किसी के पास धन और धर्म दोनों रह सकते हों तो भले रहें। लेकिन दोनों में से एक के जाने का समय आवे तो उस समय धन भले ही चला जाय, मगर धर्म को नहीं जाने देना चाहिए। परन्तु आज लोगों की क्या दशा है? आठ आने के लिए ही लोग क्या असत्य बोलने को तैयार नहीं हो जाते? ऐसा करने वाला धन को बड़ा मानता हैं या धर्म को? धर्म का त्याग करके ग्रहण किया हुआ धन टिक नहीं सकता। धर्म तो गया ही है, तब धन भी गये विना नहीं रहेगा। इस प्रकार अन्त मे दोनों से ही हाथ धोना पड़ेगा। इसके विपरीत अगर धर्म को पकड़ कर रक्खा जायगा तो गया हुआ धन भी विना आये नहीं रह सकता। वस्तुतः धर्म के त्याग में कल्याण नहीं है। कल्याण तो धर्म की आराधना में है। धर्म के प्रेमी की प्रतिज्ञा होती है-

सिर जावे तो जावे मेरा सत्य धर्म नहीं जावे।

धर्म का सौदा सिर के बदले में होता है। धर्म का पालन वही कर सकता है जिसमें धन तो क्या प्राण जाने पर भी धर्म को त्याग न करने का साहस होता है। मर्यादा-पुरुष रामचन्द्र और सत्यवीर हरिश्चन्द्र की कथाएँ इसके लिए प्रसिद्ध हैं। कहा जा सकता है कि रामचन्द्र और हरिश्चन्द्र

ने सत्य के लिए अनेक कष्ट सहन किये, यह कथन काल्पनिक भी हो सकता है और जनता को सत्य की ओर आकर्षित करने के लिए यह कथाएँ गढ़ ली होंगी। मगर ऐसा समझना भूल है। धर्म के लिए कष्ट सहने वाले विशिष्ट पुरुष सदा से होते आये हैं। पौराणिक काल में भी हुए हैं और समीपवर्त्ती ऐतिहासिक काल में भी हुए हैं।

इतिहास से विदित होता है कि सम्राट् औरंगजेब के समय में भारत में धर्म पर संकट आ गया था। औरंगजेब कट्टर सम्प्रदायवादी था। उस समय सिक्ख-गुरु तेगवहादुर ने तथा उनके अनुयायी अनेक लोगों ने क्या कम कष्ट सहन किये थे?

मज़हवी कानून के अनुसार औरंगजेब ने सोचा—काफ़िरों को मुसलमान वनाना ज़रूरी है, मगर जव तक लोगों को अन्न का कष्ट नहीं होता तव तक उन्हें मुसलमान वनाना आसान नहीं है। अन्न का कष्ट वड़ा जवर्दस्त होता है। उससे घवराकर लोग जल्दी मुसलमान हो जाएँगे। ऐसा सोचकर उसने अन्न का दुर्भिक्ष फैलाने का निश्चय किया। अपना इरादा पूरा करने के लिए वादशाह ने कुछ सेना काश्मीर भेजी और हुक्म दे दिया कि सेना वहाँ जाकर फ़सल पर अधिकार कर ले। जो लोग मुसलमान होना स्वीकार करें उन्हें फसल ले लेने दी जाय और जो मुसलमान होना स्वीकार न करें उन्हें न लेने दी जाए। उनकी फ़सल

जब्त कर ली जाय। सेना ने यही किया। लोग परेशान हो गए। धर्म पर दृढ़ रहने वाले सभी तो होते नहीं हैं और न सब धर्म के लिए सब कुछ सहन ही कर सकते हैं। इसलिए बहुत से लोग इस अन्न-संकट के कारण मुसलमान हो गए।

अपने कार्य में सफलता मिलती देखी तो बादशाह को और लोभ हुआ। उसने सोचा—लोगों को मुसलमान बनाने का यह उत्तम उपाय है। बस, सेना भेज दी जाय और साथ में क़ाज़ी-मुल्ला को भेज दिया जाय तो इस्लाम का अच्छा प्रचार होगा।

बादशाह ने दूसरी बार पंजाब में सेना भेजी। पंजाब के लोग इस मुसीबत से घबराकर सिक्खों के गुरु तेगबहादुर के पास पहुँचे। उनसे बोले—धर्म पर ऐसा विकट संकट आया है। आप हम लोगों की रक्षा कीजिए। तेगबहादुर ने उत्तर दिया—तुम लोग स्वयं बादशाह को जुल्म करने के लिए उत्साहित करते हो। अगर एक भी आदमी में साहस हो तो वह सब में तेज भर सकता है। अगर तुम लोगों को धर्म की रक्षा करनी है तो एक काम करो। बादशाह से यह कह दो कि आप हम लोगों को व्यर्थ ही परेशान करते हैं। अगर हमारा गुरु तेगबहादुर मुसलमान हो जाएगा तो लाखों करोड़ों आदमी बिना जुल्म किये ही मुसलमान हो जाएँगे। तुम्हारे ऐसा कहने पर वह मुझे मुसलमान बनाने को लल-चाएगा। इससे आगे मैं स्वयं समझ लूँगा।

लोगों ने बादशाह से ऐसा ही कहला दिया। बादशाह ने सोचा—यह ठीक है। किसी उपाय से तेगबहादुर को मुसलमान बना लिया जाय। उसने तेगबहादुर को जल्दी दिल्ली पहुँचने का बुलौआ भेज दिया।

औरंगज़ेब ने मज़हब के नाम पर बहुत जुल्म किया था। वह समझता था कि मै बहुत अच्छा कर रहा हूँ, मगर वास्तव में उसके जुल्मों के कारण मुगल सल्तनत दिन-प्रतिदिन गिरती जा रही थी। मुगल-साम्राज्य अस्त हो रहा था। औरंगज़ेब के बाद जो बादशाह हुए वे नाम मात्र के बादशाह हुए। जब अत्याचार बढ़ता है तो यही परिणाम होता है। रावण का अत्याचार जब बढ़ गया तो वह, उसका परिवार और उसका राज्य मिट ही गया। जहाँ अन्याय है वहाँ नाश है ही।

बादशाह का बुलौआ आने पर तेगबहादुर दिल्ली जाने के लिए तैयार हुए। उनके अनुयायियों ने कहा—बादशाह जुल्मी है। वह आपको जीवित नहीं आने देगा। इसलिए आपका वहाँ जाना ठीक नहीं है।

तेगबहादुर ने कहा—मुझ जैसे किसी का सिर जाने पर ही लोगों में जागृति आएगी। बलिदान बिना जनता में तेजस्विता नहीं आ सकती। इस समय धर्म-रक्षा के लिए बलिदान की आवश्यकता है। मेरे बलिदान से धर्म की रक्षा होगी। इस पर भी तुम मुझे रोकते हो तो गुरु नानक का

कथन याद करो। वह कह गये हैं कि मेरे समान सात आदमियों का बलिदान होने पर ही कल्याण होगा। अब तुम्हीं बताओ कि मैं गुरु की आज्ञा मानूँ या अपनी जान बचाऊँ?

सिख अपने गुरु की आज्ञा के बहुत पाबंद होते हैं। इसलिए वह आगे कुछ न बोले। आखिर तेगबहादुर दिल्ली गये। बादशाह से मिले। बादशाह ने उनके सामने बड़े-बड़े प्रलोभन रक्खे। तेगबहादुर ने कहा—सब चीज़ों की अपेक्षा मेरा धर्म बड़ा है। मै संसार की किसी भी चीज़ के लिए अपना धर्म नहीं त्याग सकता।

जब प्रलोभन हार गया तो धमकियाँ आरंभ हुईं। बादशाह ने कहा—अगर सीधी तरह मान जाओगे तो ठीक है वर्ना जबर्दस्ती तुम्हारे मुँह में गाय का गोश्त ठूँस दिया जाएगा। अगर तुम में कोई चमत्कार हो तो बतलाओ।

तेगबहादुर ने कहा—चमत्कार बतलाना बाजीगरों का काम है। ईश्वर के भक्त चमत्कार नहीं बतलाया करते। वे यह मानते हैं कि यह सारा ही संसार चमत्कारमय है। इसीलिए मुझसे और कोई चमत्कार की आशा मत कीजिए। हाँ, एक ही चमत्कार मै दिखला सकता हूँ। वह यह कि अवसर आने पर धर्म की रक्षा के लिए किस प्रकार प्रसन्नता के साथ प्राण दिये जा सकते हैं।

बादशाह ने कहा—यह बड़ा हठी है। शहर के चौराहे पर खड़ा करके इसे कत्ल कर दिया जाय।

तेगबहादुर अगर अपना धर्म छोड़ देते तो उन्हें लाखों-करोड़ों की सम्पदा मिलती। धर्म का त्याग न करने की अवस्था में प्राणों से हाथ धोना पड़ रहा है। अब सोचना चाहिए कि उन्हें दो में से क्या करना चाहिए था?

आज तो लोग थोड़े से लाभ के लिए भी धर्म को छोड़ बैठते हैं। दो-चार आने के लिए झूठ बोलने में संकोच नहीं करते। लेकिन तेगबहादुर ने इतनी सम्पत्ति का लोभ नहीं किया और न प्राणों की ही परवाह की। वास्तव में ऐसी दृढ़ता होने पर ही धर्म का पालन किया जा सकता है।

अन्त में सिखगुरु तेगबहादुर का सिर बाजार के बीच, चौराहे पर काट डाला गया। बादशाह का खयाल था कि तेगबहादुर को इस प्रकार कत्ल करने से, बहुत-से लोग डर के मारे मुसलमान बन जाएँगे। किन्तु हुआ परिणाम कुछ और ही। तेगबहादुर के बलिदान से जनता में तेज आ गया। लोग अपने धर्म की रक्षा करने में दृढ़ हो गए।

तात्पर्य यह है कि धर्म के लिए नाना प्रकार के कष्ट उठाने वाले लोग सदा होते आये हैं। उनकी टेक यही है—

सिर जावे तो जावे मेरा सत्यधर्म नहीं जावे।

ऐसी घटनाएँ समय-समय पर होती ही रहती हैं। अतएव यह कैसे कहा जा सकता है कि राम और हरिश्चन्द्र की कथाएँ हमारे ऊपर दबाव डालने के लिए ही काल्पनिक लिखी गई हैं! इसलिए सत्य और धर्म का पालन करो तथा

अहिंसा की असीम शक्ति प्राप्त करो।

राजा शान्तनु को देखकर लोग कहने लगे कि अर्थ और काम तो गौण हैं, मुख्य वस्तु तो धर्म ही है। इस प्रकार कहते हुए लोगों ने शान्तनु का अभिनन्दन करते हुए कहा— इस समय आपके समान धर्मपालक राजा शायद ही कोई हो। जनता से यह अभिनन्दन पाकर शान्तनु ने सोचा— यह रानी का ही प्रताप है। यह सोचकर शान्तनु, गंगा का और अधिक सन्मान करने लगे।

आश्वासन दे के रानी को लगे राज के काज।
निशा समय में स्वप्न में देखा रानी ने मृगराज॥
शुभ समय में सुत जन्मा है गंगकुंवर महाराज।
सब मिल . . . ... भीष्म की॥

गंगा और शान्तनु आनन्द में समय व्यतीत कर रहे थे। उस समय प्रजा मे यह भावना हो रही थी कि ऐसे दयालु और प्रजापालक महाराज के यहाँ पुत्र का जन्म हो तो अच्छा है, जिससे हमारी संस्कृति की रक्षा हो सके। इसी समय राजा के मन में भी पुत्र की इच्छा हुई। रानी गंगा ने भी विचार किया—पतिदेव मेरा इतना सन्मान करते हैं! इस ऋण से मुक्त होने के लिए वह शुभ समय कब आएगा जब मै उन्हें पुत्र-रत्न का उपहार दे सकूँगी।'

भावना में प्रबल शक्ति होती है। भावना की अदृश्य शक्ति का महत्व बहुत अधिक है। इसीलिए ज्ञानी जन भावना-

शुद्धि पर बहुत बल देते हैं। यह उक्ति भी प्रसिद्ध है—

याद्दशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति ताद्दशी।

जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सफलता मिलती है। स्वार्थ की भावना से दूसरी तरह का काम होता है और परमार्थ की भावना से दूसरी तरह का। शान्तनु और गंगा दोनों की ही भावना थी कि एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हो तो अच्छा है। पुत्र शब्द की व्युत्पत्ति है—

पुनातीति पुत्रः

अर्थात् जो अपने पिता के धर्म को उज्ज्वल करे वही पुत्र है।

सब की भावना फली या आने वाले प्राणी के पुण्य ने काम किया, यह कौन कह सकता है? यह भी कैसे कहा जा सकता है कि दोनों का प्रभाव न हुआ हो? कारण कुछ भी हो, एक रात गंगा ने स्वप्न में बड़े केसरी सिंह को अपने मुख में प्रवेश करते देखा। यद्यपि गंगा स्वयं भी स्वप्नशास्त्र को जानती थी फिर भी वह अपनी ही बुद्धि पर अवलंबित नहीं रही। वह अपने शयनागार से उठ कर शान्तनु के शयनागार में गई।

इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में पति और पत्नी का एक ही विस्तर पर सोना तो दूर रहा, दोनों एक शयनागार में भी नहीं सोते थे। वास्तव में पति-पत्नी की अत्यधिक समीपता हानिकारक ही सिद्ध होती है। जैसे

आग पर घी रखने से घी का सत्व नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अत्यधिक समीपता से पति-पत्नी का सत्व भी नष्ट हो जाता है। ब्रह्मचर्य की महिमा जानने वाले और मर्यादा का पालन करने वाले विवेकी लोग सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि उनकी शक्ति का निरर्थक और अमर्याद क्षय न होने पावे।

जब महारानी गंगा ने शान्तनु के शयनागार में प्रवेश किया तो धीमी आहट से भी शान्तनु की नींद खुल गई। राजा ने आनन्दपूर्वक गंगा को भद्रासन पर बिठलाया और स्वस्थ होने देकर पूछा—'आज इस समय आने का क्या कारण है ?

रानी—प्राणनाथ ! आपकी जय हो, विजय हो। मैं आपसे जो सन्मान पा रही हूँ वह ऋण के रूप में बढ़ता जाता है। आपके इस ऋण को मै चुकाने में असमर्थ हूँ, यद्यपि पुत्र के रूप में उसका ब्याज चुकाना चाहती हूँ। मेरी यह कामना फलवती होती जन पड़ती है। अभी मैंने स्वप्न में देखा है कि एक केसरी सिंह मेरे मुख में घुस गया है।

स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर महाराज शान्तनु को प्रसन्नता हुई। उन्होंने गंगा से कहा—वल्लभे ! यह स्वप्न शुभ है। इस स्वप्न के फल-स्वरूप तुम्हें राज्य, धन और पुत्र की प्राप्ति होगी।

रानी को राज्य आदि की प्राप्ति होगी तो क्या राजा को

नहीं होगी ? फिर राजा ने ऐसा क्यों कहा है कि तुम्हें राज, धन और पुत्र की प्राप्ति होगी ? यद्यपि प्राप्ति तो राजा को भी होगी लेकिन राजा ने रानी को प्रधानता दी है। जब जिसे सन्मान देना होता है तब उसे प्रधानता दी जाती है।

राजा का कथन सुनकर गंगा को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह मन ही मन सोचने लगी—पति का मुझ पर कितना अनुग्रह है कि वे मुझे इस तरह सम्मानित करते हैं। इस प्रकार विचार करती हुई वह अपने शयनागार में लौट आई।

पहले शान्तनु मृगया का शौकीन था मगर गंगा के संसर्ग से उसकी वह आदत बदल गई। इस कारण सब लोग उसकी प्रशंसा करके कहने लगे—इस धर्मात्मा राजा के यहाँ धर्मात्मा पुत्र हो तो अच्छा। जैसे समय पर वर्षा होने से सब को आनन्द होता है, उसी प्रकार सब की भावना के अनुसार गंगा ने सिंह का स्वप्न देखकर गर्भ धारण किया और गर्भ का काल समाप्त होने पर एक तेजस्वी और लक्षण-सम्पन्न पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के जन्म से शान्तनु और गंगा को तो हर्ष हुआ ही, किन्तु प्रजा को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। राज्य में घर-घर ऐसा उत्सव मनाया जाने लगा, मानों प्रत्येक घर में ही पुत्र हुआ हो। लोग कहने लगे—

गंगा और समुद्र के संगम को तीर्थस्थान समझा जाता है। इसी प्रकार गंगा और शान्तनु के संगम से जो पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह भी लोगों को आनन्द देने वाला

होगा। शान्तनु समुद्र के समान हैं और उन्हें गंगा गंगा के समान मिली हैं। इस कारण यह भी एक सजीव तीर्थ हो गया है। इस तीर्थ का फल जगत् का कल्याण करने वाला हो तो आश्चर्य ही क्या है ?

कहा जा सकता है—गंगा का जल मीठा और समुद्र का खारा होता है। गंगा का जल समुद्र में मिलता है तो वह भी खारा बन जाता है। ऐसी दशा में गंगा और समुद्र के संगम को तीर्थ क्यों माना जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है। जैसा सुना है उसके अनुसार और जैसा पढ़ा है उसके अनुसार गंगा की धारा तीव्र वेग वाली होती है, इस कारण वह समुद्र को भेद कर दूर तक समुद्र में चली जाती है। खारे पानी में मीठे पानी की तह मिलने से जहाज वालों को कितना आनन्द होता है, यह सभी समझ सकते हैं। इस प्रकार समुद्र में प्रवेश करने के बाद भी गंगा का मीठा पानी मीठा ही बना रहता है, इसी कारण शायद गंगा-सागर-संगम को तीर्थ माना जाता है। जो खारे में रहकर भी मीठा बना रहता है वह तीर्थ क्यों न हो ?

सब लोग कहने लगे—शान्तनु और गंगा से जो पुत्र उत्पन्न हुआ है वह मानों समुद्र में से रत्न निकला है। जैसे सागर में गंगा के मिलने से सागर का सन्मान बढ़ा है, उसी तरह गंगा के मिलने से शान्तनु का भी सन्मान बढ़ा है।

गंगा का चरित स्त्री-समाज के लिए उपादेय है। उन्हें

समझना और ध्यान देना चाहिए कि पति से मिलकर उन्होंने यदि पति का सन्मान बढ़ाया तब तो अपने स्त्री-धर्म का पालन किया है, अन्यथा नहीं।

जैसे अंधे को आँख मिलने से और निपूते को पुत्र मिलने से आनन्द होता है, उसी प्रकार हस्तिनापुर में राजा-प्रजा को आनन्द हुआ। शान्तनु के यहाँ पुत्र होने से सब का हृदय अपार हर्ष से पुलकित हो गया। पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य में शान्तनु ने खूब आमोद-प्रमोद के साथ उत्सव मनाया और दान देकर याचकों को अयाचक बना दिया।





पति का परित्याग



पुत्ररत्न पाकर गंगा मानों निहाल हो गई। उसकी चिर-आकांक्षा सफल हुई। शान्तनु और गंगा अभिन्न-हृदय तो थे ही, दोनों के हृदयों को जोड़ने वाली एक कड़ी और बन गई। राजा और रानी प्रसन्नता और आनन्द में अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए दिन व्यतीत करने लगे।

सब दिन समान नहीं रहते। जैसे जड़ प्रकृति क्षण-क्षण पलटती रहती है उसी प्रकार मानव-प्रकृति भी प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है। परिवर्त्तन चाहे किसी को इष्ट हो, चाहे अनिष्ट हो, शुभ हो या अशुभ हो, वह होता ही है। संसार की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती। और सच तो यह है कि परिवर्त्तन में ही गति है, प्रगति है, विकास है, सिद्धि है। जहाँ परिवर्त्तन नहीं वहाँ प्रगति को अवकाश भी नहीं है। वहाँ एकान्त जड़ता है, स्थिरता है, शून्यता है। अतएव परिवर्त्तन जीवन है और स्थिरता मृत्यु है। परिवर्त्तन

के आधार पर ही विश्व का अस्तित्व है। ऋतु-परिवर्तन न हो तो क्या परिणाम निकलेगा? मानव-जीवन में अवस्थाओं का परिवर्त्तन अगर न होता तो क्या स्थिति होती? वस्तुतः परिवर्त्तन होना आवश्यक है। अगर आवश्यक न हो तो भी अनिवार्य है।

इस प्रकार परिवर्त्तन के चक्र पर चढ़ा हुआ सारा संसार घूम रहा है। लेकिन मनुष्य मोह के वश होकर किसी परिवर्तन ो सुखद और कल्याणकारी मान लेता है और किसी को दुखद एवं अकल्याणकारी। कोई भी नैसर्गिक परिवर्त्तन मनुष्य से पूछकर नहीं होता। वह मानवीय इच्छा से पर है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को उचित तो यह है कि वह मध्यस्थ भाव से परिवर्त्तन को देखता रहे और समभाव धारण करे। किन्तु कवि के शब्दों में मनुष्य चाहता है—

जग के पदार्थ सारे, वर्तें इच्छानुसार जो मेरी।
तो मुझको सुख होवे, पर ऐसा हो नहीं सकता॥

संसार के सब पदार्थ अगर मनुष्य की इच्छा पर चलने लगें तो मनुष्य राज़ी रहे। 'पर ऐसा हो नहीं सकता।' अतएव मनुष्य के लिए सुख का एक ही मार्ग रह जाता है और वह यह है कि किसी भी प्रकार के परिवर्त्तन के समय वह समभाव का परित्याग न करे। अगर विभिन्न परिवर्त्तनों में वह राग-द्वेष धारण करेगा तो उसे सुख-दुख के झूले में झूलना ही पड़ेगा। आज पैसे भर सुख का अनुभव करेगा तो कल रुपया भर

दुःख आकर उसे विह्वल बना देगा। अतएव जो परिवर्त्तन होता है, वह होता है। उसमें हर्ष-विषाद करने की आवश्यकता नहीं। गंगा ने इस तथ्य को समझ लिया था।

मृगया-रसिकों के कहने से राजा चढ़े शिकार,
महारानी ने आ समझाया माना नहीं लिगार।
निज सुत लेकर के गंगाजी गईं पिता घर-द्वार, ॥
सब मिल " " भीष्म की ॥

राजा शान्तनु के पास कुछ ऐसे बुरे लोग भी थे जो शिकार के शौकीन थे। अच्छा राजा भी बुरे लोगों की संगति से बुरा बन जाता है। कुसंगति के प्रभाव को कौन नहीं जानता? कुसंगति से अच्छे-अच्छे बिगड़ कर मिट्टी में मिल गये हैं। शक्कर मीठी होती है और मिर्च तीखी होती है। शक्कर खीर में और मिर्च शाक में डाली जाय तो दोनों सुधर जाते हैं। अगर इसके विपरीत किया जाय तो दोनों बेकाम हो जाते हैं। इसी प्रकार बुरे के संसर्ग से अच्छा भी बुरा बन जाता है।

राजा शान्तनु के पास रहने वालों ने उससे कहा—महाराज, कुछ विचार कीजिए। आप निरन्तर महल में ही निवास करते हैं, कभी बाहर नहीं जाते, इस कारण आपका तेज कम हो गया है। आपके शरीर में पहले जैसी तेजस्विता नहीं रही। पहले तो महारानी नई आई थीं, इसलिए हम आपसे कुछ न कह सकते थे, लेकिन अब तो राजकुमार का भी जन्म

हो गया है। अतएव अब महारानी की ओर से संतोष कीजिए और अपने शरीर के स्वास्थ्य की ओर ध्यान दीजिए। आपके विषय में लोग तरह-तरह की बातें करते हैं। इस अपवाद को मिटाना भी आवश्यक है। कहावत है—

यद्यपि शुद्धम् लोकविरुद्धम्,
न हि करणीयं न हि चरणीयम् ॥

कोई काम भले शुद्ध हो, अगर वह लोक-विरुद्ध है तो नहीं करना चाहिए। आपके कानों तक तो बात पहुँच नहीं पाती। मगर लोग आपस में कहते हैं—राजा पहले कैसे थे और अब कैसे हो गए हैं! रानी की गुलामी करते-करते थकते ही नहीं हैं! कभी मृगया के लिए भी तो बाहर नहीं निकलते! यह लोकापवाद आपके लिए बहुत अपमानजनक है। अतएव आप महल में ही न घुसे रहें वरन् मृगया के लिए वन में पधारें। इससे आपका स्वास्थ्य भी सुधरेगा और लोकापवाद भी दूर हो जायगा।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि पत्नी को पति की आज्ञा में रहना चाहिए अथवा पति को पत्नी की आज्ञा में रहना चाहिए, इस प्रकार का कोई एकान्त नियम नहीं बनाया जा सकता। इस विषय में नीति यही कहती है कि जिसमें ज्यादा बुद्धि हो उसी की आज्ञा में दूसरे को रहना चाहिए, चाहे अधिक बुद्धि वाला पति हो या पत्नी हो। यह नहीं समझना चाहिए कि स्त्री छोटी होती है या उसमें बुद्धि नहीं

होती। अतएव पुरुष, स्त्री के कहने में कैसे रहे? महारानी विक्टोरिया स्त्री ही थी और भारत के राजा पुरुष थे। फिर भी राजा उसकी आज्ञा में रहे या नहीं? अतएव पुरुषत्व का अभिमान करके यह मत सोचो कि हम पुरुष होकर स्त्री का कहना क्यों मानें? स्त्री मे अगर विवेक-बुद्धि अधिक है तो उसका कहना मानने में ही कल्याण है। स्त्री मे अधिक बुद्धि होने पर भी उसकी अवगणना करना स्त्रीत्व का अपमान है और पुरुषत्व का मिथ्या अहंकार है।

लोगों की बातें सुनकर शान्तनु ने कहा—'अगर मैं मृगया को नहीं जाता तो इसमें अपवाद की क्या बात है? निर्बलों और गरीबों की रक्षा करना मेरा धर्म है। इसी के लिए मैं राजा हूँ और पृथ्वीपति कहलाता हूँ। मै मृगया न करके अगर अपने धर्म का पालन करता हूँ तो क्या बुरा करता हूँ?

लोग बोले—'आप पृथ्वीपति तो पहले भी थे। फिर भी मृगया के लिए जाते थे या नहीं? मृगया करना तो राजा का कर्त्तव्य है। अतएव आपको उससे परहेज़ नहीं करना चाहिए। आप चाहे धर्म का विचार करके ही मृगया न करते हों मगर लोग तो यही समझते हैं कि राजा, रानी के गुलाम बन गये हैं, इसीलिए बाहर नहीं निकलते। इसके अतिरिक्त मृगया के लिए चलने पर रानी की परीक्षा भी हो जायगी। मालूम हो जायगा कि रानी आपके प्रति कितना प्रेम रखती हैं! आज तक आपने उनकी बात मानी है। वह आपको प्रेम

करनी होंगी तो एक बात आपकी भी मान जाएँगी। एक बार मृगया की तैयारी करके देख तो लीजिए कि रानी क्या कहती हैं और क्या करती हैं ?

इस प्रकार अनेक बातें कहने-सुनने से अथवा भवितव्य के वश होकर राजा उन लोगों के जाल में फँस गया। उसने सोचा—जाने और न जाने की बात फिर सोचेंगे, एक बार तैयारी करके देखें तो सही कि रानी क्या कहती और क्या करती है ? इस प्रकार विचार कर उसने मृगया की तैयारी करने की आज्ञा दी। उसने अपनी प्रतिज्ञा की भी उपेक्षा कर दी। राजा की आज्ञा के अनुसार तैयारी होने लगी। जो लोग पहले मृगया में राजा के साथी थे वे राजा के आसपास घूमने लगे।

मृगया की तैयारी के समाचार गंगा को मालूम हुए तो वह चकित रह गई। सोचने लगी—इतने दिनों बाद महाराज फिर वन के गरीब जानवरों को सताने के लिए उद्यत हो गए हैं ! जान पड़ता है उन्हें अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण नहीं रहा। ऐसा होना संभव भी है। राजा लोग भूल जाया करते हैं। अतएव एक बार जाकर महाराज को प्रतिज्ञा का स्मरण करा देना चाहिए।

गंगा, महाराज शान्तनु के पास पहुँची। नम्रता के साथ उसने कहा—महाराज ! आज मृगया की तैयारी कैसी ? क्या वन के दीन पशुओं ने आपका कुछ अपराध किया है कि

उन्हें मार डालने की तैयारी की है ? आपने निरपराध जीवों की हिंसा करने का त्याग किया है।

राजा ने उत्तर दिया—महारानी, तुम महल के काम देखो, हम लोगों के काम में पड़ना उचित नहीं है। हमारे कार्य में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं।

राजा का उत्तर सुनकर गंगा दंग रह गई। वह मन में सोचने लगी—आज महाराज का मिजाज दूसरा ही मालूम होता है। इसके बाद वह बोली—महाराज ! मै केवल महल की रानी ही नहीं हूँ आपकी धर्मपत्नी भी हूँ। आपके धर्म की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। इस कारण पूछती हूँ कि आज आपने मृगया की तैयारी कैसे करवाई है ?

राजा बोला—धर्म की बात मै स्वयं भी समझता हूँ। तुम समझाने का कष्ट मत करो।

गंगा सोचने लगी—यह तो श्मशान-वैराग्य ही हुआ। राजा अपनी प्रतिज्ञा की उपेक्षा करते जान पड़ते हैं। 'राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ?' अर्थात् किसी ने राजा को भी मित्र होते देखा या सुना है, यह उक्ति आज चरितार्थ हो रही है। लेकिन कुछ भी हो, एक बार फिर समझाना चाहिए। यह सोचकर गंगा ने कहा—

> वैरिणोऽपि हि मुच्यन्ते प्राणान्तेतृणभक्षणात ।
> तृणाहारा सदैवैते हन्यन्ते पशवः कथम् ? ॥

अर्थात्—महाराज ! मुंह में तिनका दबाने वाले वैरी को

भी छोड़ दिया जाता है-उसको भी नहीं मारा जाता, तो जो पशु सदैव तृण ही खाते हैं, उन्हें मारना कैसे उचित कहा जा सकता है ? अतएव आप दीन पशुओं पर चढ़ाई मत कीजिए।

अधिकार मिल जाने पर मनुष्य को अधिक कार्य करना चाहिए।

अधिकमधिकं कार्यं करोतीति-अधिकारी।

इसके विरुद्ध अधिकार पाकर जो यह सोचता है कि मेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है ? और ऐसा सोचकर जो अन्याय पर उतारू हो जाता है उसके लिए 'अधिकार' 'धिक्कार' बन जाता है।

शान्तनु का गंगा पर जब तक परिपूर्ण अधिकार नहीं था तब तक वह उसे ऊँची दृष्टि से देखता था। जब गंगा उसकी पत्नी हो गई और उसके पुत्र भी हो गया, इस प्रकार उसका गंगा पर पूरा अधिकार हो चुका तो उसे यह अभिमान आगया कि गंगा अब क्या कर सकती है ? इस अभिमान के कारण उसने गंगा के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा की भी उपेक्षा कर दी। फिर भी गंगा उसे समझाने का यत्न कर रही है।

गंगा ने कहा—महाराज ! आपने मेरी आज्ञा में रहने की प्रतिज्ञा की थी। मैंने उसी समय कहा था कि पुरुष स्वार्थ के वश हो कर प्रतिज्ञा कर लेते हैं और स्वार्थ सिद्ध होने पर बदल जाते हैं। क्या आप भी ऐसे पुरुषों की श्रेणी में जाना

चाहते हैं ? अगर आप अपनी प्रतिज्ञा भंग करना ही चाहें तो आपकी इच्छा। मगर गंगा प्राण देकर भी अपनी प्रतिज्ञा निवाहेगी। जिस क्षण आप अपनी प्रतिज्ञा भंग कर देंगे उसी क्षण मुझे अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए आपका महल छोड़कर चला जाना पड़ेगा। आप भूले न होंगे, आपने कहा था—मेरु चाहे डिग जाय किन्तु मै अपनी प्रतिज्ञा से नहीं डिग सकता। इस प्रकार दृढ़ता के साथ की हुई प्रतिज्ञा और मुझे दिये वचन के विरुद्ध आज आप निर्दोष वन-पशुओं को मारने की तैयारी कर रहे हैं ?

गंगा का यह निर्भीक कथन सुनकर राजा विचार में पड़ गया। पुरानी सब बातें उसके मस्तिष्क में घूम गईं। वह कुछ ढीला पड़ा। लेकिन जब उसने सोचा कि मृगया की तैयारी हो चुकी है। अब अगर मै नहीं जाता और रुक जाता हूँ तो लोगों का यह कहना पुष्ट हो जाएगा कि राजा, रानी का सेवक है; इसके अतिरिक्त मुझे रानी की परीक्षा भी करनी थी। मालूम हुआ कि रानी का स्वभाव ज्यों का त्यों बना है। उसमें तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ। जब रानी अपना स्वभाव नहीं बदलती तो मै भी अपना स्वभाव क्यों बदलूँ ?

इस प्रकार लोकापवाद की कल्पित भीति से और पुरुषत्व के मिथ्या अभिमान से प्रेरित होकर शान्तनु चुपचाप ह से चल दिया और मृगया के लिए रवाना हो गया।

साधारण स्त्री के लिए यह विकट समस्या थी। एक ओर प्रतिज्ञा है और दूसरी ओर पति, राजमहल के सुख और आमोद-प्रमोद हैं। वह किसे छोड़ और किसे पकड़े ? मगर गंगा असाधारण स्त्री थी। उसने दुविधा में अपने मन को उलझने ही नही दिया। जब वह राजमहल में अकेली रह गई तो मन ही मन उसने निश्चित कर लिया—महाराज ने अपनी प्रतिज्ञा भंग की है मगर मै अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं होने दूँगी। मै जिस महल में आदर के साथ रही हूँ, उसमें निरादरपूर्वक नही रह सकती। मैं सड़े पान की तरह यहाँ नहीं पड़ी रह सकती। मै विषयभोग की दासी नहीं हूँ। अतएव मुझे शीघ्र अपने पिता के घर चल देना चाहिए। स्त्री के लिए दो ही स्थान हैं—पति का घर और पिता का घर। जब पति के घर आदर न हो तो पिता के घर के अतिरिक्त और कौन-सा स्थान रह जाता है ?

शान्तनु अपनी प्रतिज्ञा से च्युत हो गया था, लेकिन गंगा प्रतिज्ञा पर दृढ थी। गंगा भी अपनी प्रतिज्ञा भूल गई होती तो शायद यह कथा ही न रची गई होती। जब तक पति या पत्नी में से कोई एक ही भूला रहता है, तब तक तो गनीमत रहती है। मगर जब दोनों भूल जाते हैं तो स्थिति बहुत खराब हो जाती है।

गंगा पिता के घर जा पहुँची। पिता राजा जह्नु ने सारा वृत्तान्त सुनकर उसका सन्मान किया और कहा—पुत्री, चिन्ता मत करना। तेरी भावना पति का कल्याण करने की है, इसलिए सब प्रकार मंगल ही होगा। दूसरे कुछ भी करें, हमे तो अपना हृदय टटोलना चाहिए।

———



फिर वनवास

——::::()::::——

पत्नी पुत्र से शून्य महल में जब आये राजान,
क्या करना औ कहाँ पर जाना नहीं शान्ति का स्थान।
प्रिया पुत्र बिन आज महल यह लगता मुझे श्मशान,
मिल जय बोलो महाव्रतधारी भीष्म की ॥
रानी ने मुझको समझाया नहीं मानी मैं बात,
हुआ लाभ यह रानि पुत्र सह छोड़ गई साक्षात।
अपने ही हाथों से मैंने किया कुठाराघात,
सब ... ... भीष्म की ॥
कुछ दिन चिन्तित रहे राजवी सहचारी समझाय,
राज-काज में लगे न चित्त तो प्रिया पुत्र के मांय।
किसी तरह से मन बहलाते अपना काल बिताय,
सब .. ... भीष्म की ॥

महारानी गंगा के चले जाने के पश्चात् राजा आखेट करके वन से लौटा। उसके प्रशंसक प्रशंसा के पुल बाँध रहे

थे। कोई कहता—'आज आपने गज़ब की वीरता दिखलाई।'

दूसरा कहता—आखिर तो महाराज क्षत्रिय हैं। क्षात्र तेज सदा सोता नहीं रहता।

तीसरा कहता—महाराज को यही करना उचित था। आज शरीर में और मन में नवीन ही स्फूर्ति मालूम होती होगी।

इस प्रकार की चापलूसी भरी बातें सुनकर भी राजा का चित्त शान्त नहीं था। भीतर ही भीतर कहीं कोई डक मार रहा था। वह अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हो चुका है, यह बात उसे भूलती नहीं थी। उसने रानी की निर्भय बातें सुनी थीं। रानी की प्रतिज्ञा की अटलता पर भी उसे विश्वास था। वह आगे आने वाली घटनाओं का चिन्तातुर होकर विचार कर रहा था।

आखिर आते ही वह राजमहल में चला गया। उसकी संभावना साकार हो उठी। उसने देखा-महल सूना पड़ा है।

दासियों से पूछने पर मालूम हुआ—महारानी अपने पुत्र के साथ चली गई हैं और अपने पिता के घर गई हैं।

यह जान कर शान्तनु के चित्त को कैसा आघात लगा, यह नहीं कहा जा सकता। वह मन ही मन कहने लगा—'आह गंगा! तुमने गज़ब किया। मुझे नहीं मालूम था कि तू बात की इतनी पक्की है! मैंने समझा था, जैसे मुझे विषयभोग प्रिय हैं, उसी प्रकार तुझे भी होंगे। लेकिन मैंने समझने में भूल की। तू ने अपनी प्रतिज्ञा के सामने मेरी, राजसन्मान

की और सुख की भी अपेक्षा नहीं की ! तू सर्वस्व त्याग कर चलती बनी !'

राजा इस प्रकार दुखपूर्ण पश्चात्ताप करने लगा। राजमहल उसे श्मशान के समान जान पड़ने लगा। वह कहने लगा—अगर गंगा मिल जाती तो मै भविष्य के लिए फिर प्रतिज्ञा कर लेता। मगर उसने तो प्रतीक्षा ही नहीं की। इसमें उसका दोष भी क्या है ? प्रतिज्ञा से भ्रष्ट तो मैं हुआ हूँ ! मेरे मन में पुरुष होने का अहंकार उत्पन्न हुआ। मैंने सोचा कि मै राजा हूँ और रानी के कहने में कैसे रहूँ ? इस अहंकार ने मुझे कहीं का न रहने दिया। गंगा इतनी निस्पृह है, यह कौन जानता था ?

इस प्रकार रानी के चले जाने से राजा को अत्यन्त विषाद हुआ। वह उदासीन रहने लगा। दूसरे लोगों को भी राजा की उदासीनता का पता चला। उसके साथी समझाने लगे—प्रभो ! आप रानी के जाने से दुखित क्यों होते हैं ? रानीजी को भी तो आपका विचार करना चाहिए था ! परम्परा के अनुसार उन्हें आपकी आज्ञा में रहना चाहिए था। पति की आज्ञा में रहना पत्नी का कर्त्तव्य है। रानी ने अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया। उन्होंने आपकी जरा भी परवाह नहीं की। अगर ऐसी रानी चली गई तो इसके लिए दुख मनाने की क्या आवश्यकता है ? आपकी यह स्थिति दूसरे राजा जान पाएँगे तो आपकी हँसी होगी और उनका

साहस बढ़ जाएगा। अतएव किसी प्रकार की कातरता न धारण करके धैर्य रखिए।

मित्रों के समझाने-बुझाने से राजा राज्य-कार्य करने लगा। फिर भी उसका मन सदा रानी और पुत्र में ही लगा रहता था। वह यही सोचता रहता कि धर्म अप्रतिबद्धता में है, किसी व्यक्तिविशेष में नहीं। पुरुष होकर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हो गया और स्त्री होने पर भी गंगा ने अपनी कठिन प्रतिज्ञा पाली!

सच तो यह है कि त्याग और वैराग के बिना प्रतिज्ञा का पालन नहीं होता। गंगा विषय-भोग में लिप्त नहीं थी। भोगों के प्रति उसके हृदय में एक प्रकार की सहज विरक्ति थी। इसी कारण अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए उसने महान् त्याग किया। उसने सोचा—महाराज अपनी प्रतिज्ञा तोड़ते हैं तो तोड़ें, मैं नहीं तोड़ूंगी। जो होता है भले के ही लिए होता है। संभव है मेरे लिए त्याग का अवसर आ गया हो। ऐसा सोचकर उसने संसार के बड़े से बड़े सुख की उपेक्षा कर दी।

राजा के मन में आता, अगर गंगा को मना कर ले आऊं तो कैसा रहे? पर उसे साहस नहीं हुआ। सोचता—कौन-सा मुंह लेकर गंगा के पास जाऊं? वह मेरे वायदा पर भी किस प्रकार विश्वास करेगी? राजा की आंखों के सामने गंगा की मूर्ति साकार-सी बनी रहती और रानी के मधुर

शब्द उसके कानों में गूंजा करते थे।

पश्चात्ताप करने से भी पाप कम होता है। भविष्य में उस पाप-कर्म में प्रवृत्ति नहीं होती, जिसके लिए घोर पश्चात्ताप किया जाता है। किन्तु अधिकांश लोग यह भूल करते हैं कि वे अपनी भूल को भूल ही नहीं मानते। यही बहुत बड़ी भूल है। भूल न होने देना उत्तम है, किन्तु जब भूल हो जाय तो उसे छिपाने का प्रयत्न करना भी हानिकारक है। रोगी अपना रोग छिपाने का प्रयत्न करेगा तो परिणाम क्या होगा?

इधर गंगा ने सोचा—मै पति को त्याग आई हूँ और पुत्र को भी साथ ले आई हूँ। पुत्र राजकुमार है। इसे उसके योग्य शिक्षा मिलनी चाहिए। अगर मैंने उसकी समुचित शिक्षा का प्रबंध न किया तो मै अपने कर्त्तव्य से च्युत होऊँगी। कहा भी है—

माता शत्रु: पिता वैरी येन बालो न पाठितः।

वह माता और पिता बालक के शत्रु हैं। जो अपने बालक को अपढ़ रखते हैं इस नीति-वाक्य से यह ध्वनित होता है कि बालक की शिक्षा की जिम्मेदारी माता पर भी है और पिता पर भी है। दोनों का कर्त्तव्य है कि वह बालक को सुशिक्षित बनावें।

इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि शिक्षा के नाम पर कहीं कुशिक्षा न आ जाय। शिक्षा न देना संतान के विकास को रोकना है और कुशिक्षा देना उसके विकास को

विपरीत मार्ग पर ले जाना है। मान लीजिए, किसी की आँखों पर पर्दा आगया है। वह अगर डाक्टर के पास न जायगा तो पर्दा हटेगा नहीं। पर्दा हटाने के लिए डाक्टर की सहायता लेनी होगी। पर्दा हटाने के बाद डाक्टर सावधान कर देगा कि तुम्हारी आँखों का पर्दा कुएँ में गिराने के लिए नहीं हटाया गया है। इसलिए हटाया गया है कि तुम रास्ता देख कर चलो और कुमार्ग से बचो। कोई डाक्टर यह सोचकर आँखों का पर्दा हटाने से इन्कार नहीं कर सकता कि ऐसा करने से यह कुएँ में गिर जायगा! इसी प्रकार शिक्षा देने का उद्देश्य मनुष्य को सन्मार्ग सुझा देना है। शिक्षक को उचित है कि वह अपने शिष्य को सावधान कर दे कि शिक्षा पाकर तुम्हें अपना अनिष्ट नहीं करना है, वरन् कुमार्ग से बचकर सन्मार्ग पर चलना है। मगर शिष्य कहीं कुमार्ग पर न चला जाय, यह सोचकर उसे शिक्षा से वंचित रखना योग्य नहीं।

आजकल शिक्षा के विषय में बड़ी भूल की जा रही है। शिक्षा के उद्देश्य के संबंध में गहराई से विचार नहीं किया जाता। देखना चाहिए कि शिक्षा नौकरी के लिए है अथवा आत्मा की उन्नति के लिए है? शिक्षा का उद्देश्य आज नौकरी मिलना मान लिया गया है। अगर अच्छी नौकरी न मिले तो समझा जाता है कि शिक्षा व्यर्थ हो गई। मगर शिक्षा की सफलता नौकरी में नहीं है। आत्मिक विकास शिक्षा का प्रधान ध्येय होना चाहिए।

गंगा ने पहले-पहल स्वयं ही अपने पुत्र को शिक्षा दी। मातृशिक्षा साधारण चीज़ नहीं है। वह बालक में गहरे संस्कार डालती है। बालक में धीरता भर देती है। शिवाजी के विषय में कहा जाता है कि वे राजकुमार नहीं थे, फिर भी माता की शिक्षा के प्रभाव से उन्होंने आश्चर्यजनक वीरता प्रदर्शित की और हिन्दूधर्म के रक्षक कहलाए। माताएँ चाहें तो आज भी अनेक शिवाजी बन सकते है। लेकिन ऐसा करने के लिए उन्हें अपना स्वार्थ त्यागना पड़ता है। माताएँ स्वयं अज्ञान के अंधकार में भटक रही हैं। वे बालकों को नाना प्रकार के भय दिखला कर डरपोक बनाती हैं। ऐसा करके वे समझती हैं कि चलो; काम निकला। उन्हें मालूम नहीं कि बालक के कोमल हृदय में भय के संस्कार कितने गहरे पैठ जाते हैं और किस प्रकार बालक के समस्त जीवन में उनका प्रभाव बना रहता है! कहा जाता है कि जापान का पाँच वर्ष का बालक रात्रि के अंधकार में श्मशान में जा सकता है। लेकिन हमारे यहाँ चालीस वर्ष का युवक भी ऐसा करने में भयभीत होगा। कोई कह सकता है कि हमें अपने लड़के को राजा तो बनाना नहीं है और न युद्ध करने के लिए भेजना है। फिर इस प्रकार की सीख की क्या आवश्यकता है? उन्हें अपने पूर्वजों की ओर ध्यान देना चाहिए। पालित श्रावक के लड़के को क्या युद्ध करना था? वह क्या राजकुमार था? फिर उसके पिता ने उसे युद्धकला क्यों सिखलाई थी? जिन्हें

प्रतिष्ठा के साथ जीना है उसे स्वयं अपनी रक्षा करने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। जो आत्मरक्षा नहीं कर सकता, अपने आश्रित जनों की रक्षा नही कर सकता वह इज्जत के साथ जीवित नहीं रह सकता। अपनी जान बचाने के लिए दूसरों का मुँह ताकना मनुष्यता नहीं, यहाँ तक कि पशुता भी नहीं है। पशु भी अपनी और अपने आश्रित की रक्षा करने का पूरा उद्योग करता है। कायरता मनुष्य का बड़ा कलंक है। तेजस्वी पुरुष प्राण दे देता है पर कायरता नहीं दिखलाता।

मृत्यु कोई अनहोनी वस्तु नहीं है। वह जीवन में अनिवार्य प्रसंग है। जो पुरुष मरण-भय को जीत लेता है उसी में वीरता होती है। जो मरने से डरता है उसमें कायरता होगी, वीरता नहीं आ सकती। सच्चा वीर मृत्यु को खिलौना समझता है। वह मरने से नहीं डरता और जो मरने से नहीं डरता वही सच्चा वीर है। जो मृत्यु का आलिंगन करने के लिए तत्पर रहता है उसे मारना किसी के लिए भी आसान नहीं है। वास्तव में वही जीवित रहता है जो मृत्यु की परवाह नहीं करता। मरने से डरने वाले तो मरने से पहले ही मरे हुए के समान हैं। गंगा ने अपने पुत्र को वीरता की ऐसी सुन्दर शिक्षा दी।

पितृगृह रहते गंगा ने किया पुत्र विद्वान।
पवनवेग नामा के द्वारा विद्या ने बलवान ॥

धनुर्वेद आदि शिक्षा मे प्रगटे पूर्ण विधान।
सब मिल ... ... भीष्म की ॥

गंगा ने अपने पुत्र में वीरता के ऐसे सुन्दर संस्कार डाले कि किसी भी समय उसमें कायरता न आने पावे। उसने यह भी सिखाया कि शरीर धर्म की रक्षा करने के लिए है, धर्म का नाश करने के लिए नहीं।

इस प्रकार की शिक्षा दे चुकने के पश्चात् गंगा ने अपने भाई पवनवेग से कहा—आप विद्या में श्रेष्ठ माने जाते हैं। लेकिन आपकी श्रेष्ठता इसमें है कि आप अपने भानजे को भी अपने ही समान बना लें। आप ही अपने को इसका माता-पिता समझें और इसे विद्या में पारंगत करें।

पवनवेग ने कहा—गंगा बहिन, तुमने मुझे बहुत सु[illegible] काम सौंपा है। मै उन मूर्खों में नही हूँ जो अपनी वि[illegible] हो जाने देते हैं मगर दूसरों को नहीं सिखलाते। [illegible] योग्य शिष्य की खोज में ही था। अतएव [illegible] काम सौंपा है।

सिंहबाल से हस्ति-बाल ज्यों पा[illegible]
गंगानन्दन से भी त्यों सन[illegible]
घर झगड़े को देख सत[illegible]
सब मिल····

बालक में जैसे[illegible]
की शिक्षा से गंगकुमार में भी [illegible]

गकुमार सच्चा और सीधा था फिर भी बहुत से लड़के उनके माता-पिता उसके विरुद्ध शिकायत करने लगे राजा से कहने लगे कि भूचर-बालक हमारे खेचर कों को कष्ट देता है। अगर आप इसे रखना ही चाहते तो घर में ही रखिए।

गंगा के पिता और भाई सोचने लगे—लोग असलियत पता लगाते नहीं, सोचते-समझते नहीं और शिकायत ने को तैयार हो जाते हैं। भाई-बन्दों की बात है। अब ा उपाय करना चाहिए ?

गंगा को भी इसका पता चल गया। उसने सोचा— यद बालक की यहाँ शिक्षा समाप्त हो चुकी है। इसलिए इसे न की शिक्षा देना चाहिए। जो होता है वह अच्छे के लिए होता है। यहाँ के लोगों की शिकायत भी इस बालक की लाई के लिए ही साबित होगी। कुछ अच्छा होनहार है, ायद इसी कारण यहाँ के लोग शिकायत कर रहे हैं। लोगों तो सत्य-असत्य का निर्णय नहीं करना है सिर्फ विद्याधर होने का अभिमान जताना है। उन्हें सोचना तो यह चाहिए था कि हमारे बालक अगर इतने कुशल नहीं हैं तो गंगकुमार से कला सीखें। मगर उन्होंने दूसरा ही रास्ता अख्तियार किया है। वह गंगकुमार से उलटा ढंग रखते हैं। खैर, कुछ भी हो। अब मुझे यहाँ से चल कर उसी वन में रहना चाहिए जहाँ महाराज से प्रथम भेंट हुई थी। वहां रहने से किसी

विद्याधर-बालक उसकी समता नहीं कर सकता था।

लड़कों में और बड़ों-बूढ़ों में भी एक दुर्भावना होती है, जिससे लोग किसी विशिष्ट गुणवान् की समता न कर सकने के कारण उसे दूसरी तरह से गिराने की ही चेष्टा करते हैं। वह दुर्भावना ईर्षा कहलाती है। गंगकुमार के प्रभाव को सहन न कर सकने के कारण विद्याधर बालक उसी प्रकार दुखी होने लगे जैसे सिंह के बालक के सामने हाथी का बच्चा दुखी होता है। वे अपने माता-पिता से नित्य ही गंगकुमार की झूठी शिकायतें करने लगे। वह कहने लगे—अगर गंगकुमार यहाँ रहेगा तो हम नहीं रहेंगे। शिकायत करने वाले बालकों के माता-पिताओं ने असलियत की जाँच तो की नहीं और सोचने लगे कि यह उपद्रवी बालक कहाँ से आ गया है! वे लड़कों की बातों में आकर गंगकुमार के विरोधी बन गए। कहने लगे—लड़के प्रतिदिन शिकायत करते हैं और सभी लड़के शिकायत करते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी शिकायत झूठी कैसे हो सकती है!

ऐसा तर्क अवसर काम में लाया जाता है। मगर सत्य के विरुद्ध बोलने वाले चाहे जितने आदमी हों और सत्य का पक्ष लेने वाला एक ही क्यों न हो, फिर भी सत्य तो सत्य ही रहेगा। जहाज के सभी लोग अरणक के विरुद्ध हो गये थे, फिर भी अरणक ने सत्य का त्याग नहीं किया। वह तो यही सोचता था कि अन्त में सत्य की ही विजय होती है।

गंगकुमार सच्चा और सीधा था फिर भी बहुत से लड़के और उनके माता-पिता उसके विरुद्ध शिकायत करने लगे और राजा से कहने लगे कि भूचर-बालक हमारे खेचर बालकों को कष्ट देता है। अगर आप इसे रखना ही चाहते हैं तो घर में ही रखिए।

गंगा के पिता और भाई सोचने लगे—लोग असलियत का पता लगाते नहीं, सोचते-समझते नहीं और शिकायत करने को तयार हो जाते हैं। भाई-बन्दों की बात है। अब क्या उपाय करना चाहिए?

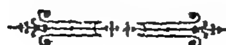
गंगा को भी इसका पता चल गया। उसने सोचा—शायद बालक की यहाँ शिक्षा समाप्त हो चुकी है। इसलिए इसे वन की शिक्षा देना चाहिए। जो होता है वह अच्छे के लिए ही होता है। यहाँ के लोगों की शिकायत भी इस बालक की भलाई के लिए ही साबित होगी। कुछ अच्छा होनहार है, शायद इसी कारण यहाँ के लोग शिकायत कर रहे हैं। लोगों को सत्य-असत्य का निर्णय नहीं करना है सिर्फ विद्याधर होने का अभिमान जताना है। उन्हें सोचना तो यह चाहिए था कि हमारे बालक अगर इतने कुशल नहीं हैं तो गंगकुमार से कला सीखें। मगर उन्होंने दूसरा ही रास्ता अख्तियार किया है। वह गंगकुमार से उलटा द्वेष रखते हैं। खैर, कुछ भी हो। अब मुझे यहाँ से चल कर उसी वन में रहना चाहिए जहाँ महाराज से प्रथम भेंट हुई थी। वहां रहने से किसी

प्रकार कलह न होगा। शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत होगा और बालक प्रकृति से सर्वोत्तम शिक्षा ग्रहण कर सकेगा।

गंगा ने अपना विचार महाराज जह्नु के सामने प्रकट कर दिया। वह यद्यपि गंगकुमार के पक्ष में थे, फिर भी रोजाना कलह से कुछ-कुछ अकुलाए भी थे। अतएव ऊपर से तो उन्होंने कहा—'बेटी, यहां रहना क्या बुरा है? जंगल में रहने की आवश्यकता क्या है? मगर मन मे सोचा--अगर ऐसा हो तो हर्ज भी क्या है? फिर वह कहने लगे—क्या तुम्हें यह घर अच्छा नहीं लगता? गंगा ने कहा--पिताजी जहाँ मेरा जन्म हुआ है, वह घर अच्छा क्यों नहीं लगेगा? फिर भी मेरा विचार यही है कि आपको मेरे संबंध में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

इस प्रकार बातचीत होने के बाद जह्नु ने कहा—अगर तुम्हारी इच्छा है तो उसी महल में रहो। मै भी समय-समय पर वहाँ आया करूँगा। किसी प्रकार की चिन्ता मत करना और जब भी चाहो यहाँ आ जाना।

पिता की आज्ञा पाकर गंगा प्रसन्न हुई। वह उसी वन में रहने लगी, जिसमें पहले रहती थी।



न रख सके तो आपकी क्या बिसात है ? फिर भी लोग समझते हैं कि संसार मानों हमारे बल-बूते पर ही चल रहा है। ऐसी ही बातों को देखकर नरसी मेहता ने कहा—

हुं करूं हुं करूं एज अज्ञानता,
शकटनो भार ज्यों श्वान ताणे।

इस प्रकार का अभिमान वृथा है कि संसार मुझ से ही चल रहा है। भरी हुई गाड़ी के नीचे चलने वाला कुत्ता अगर अभिमान करता है कि मैं गाड़ी को खींच रहा हूँ तो आप क्या कहेंगे ? जैसे कुत्ते का यह अभिमान मिथ्या है उसी प्रकार संसार को अपने आधार पर चलने का अभिमान करना भी मिथ्या है। ऐसा अभिमान करने वाले न रहेंगे फिर भी संसार इसी तरह चलता रहेगा। सारे संसार को कोई अपनी इच्छा के अनुसार नहीं ढाल सकता। ऐसी स्थिति में इष्ट संयोग मिलने पर सुखी और अनिष्ट संयोग पाकर दुखी नहीं होना चाहिए।

गंगा इस तथ्य को भलीभाँति समझती थी। अतएव जङ्गल में रहकर भी उसके मन में विषाद या खेद नहीं हुआ। वन में पहुँच कर वह सोचने लगी—'वन में कैसा आनन्द है ! न किसी प्रकार का कलह है न क्लेश है।' जो लोग अपनी दृष्टि गंगा की दृष्टि के समान मंगलमय बना लेते हैं उनके सामने संकट कभी आता ही नहीं।

गंगा ने गांगेय से कहा—

नहीं है। तुम्हें आप ही अपना गुरु बनना होगा। अपना विकास आप ही करना होगा। तुमने जो विद्या प्राप्त की है उसे यहाँ रहकर स्वतंत्रतापूर्वक विकसित करो।

गांगेय ने कहा—अच्छा माता, मै ऐसा ही करूँगा।

अपने हाथ में धनुष-बाण लेकर गांगेय वन देखने चला। वन में उसने झाड़, फूल, फल, मृग, नदी-नाले आदि देखे और वह सोचने लगा कि यह सब मुझे क्या शिक्षा देते हैं? वन में फिरता-फिरता वह एक नदी के किनारे बैठ गया। उसने नदी के संबन्ध में विचार किया। वह सोचने लगा—अविश्रान्त गति से बहती हुई यह नदी मानो मुझसे कह रही है—तूने ही अपना घर नहीं त्यागा है वरन् मै भी अपने उद्गमस्थान-पर्वत-को छोड़कर आई हूँ। लेकिन ऐसा करने से मै कल्याणी हुई हूँ या अकल्याणी, इस बात पर विचार कर। मै अपने मैके से चलकर पति (समुद्र) के पास जा रही हूँ। मार्ग में लोग मुझे 'नदी' कहते है। जो लोग मुझे 'नदी' कहते है उन्हें मै आनंदित करती हुई अपने सुसराल को जा रही हूँ।

गांगेय सोचता है—इस नदी की तरह मै भी घर त्याग कर वन में आया हूँ। नदी जिस प्रदेश मे होकर जाती है उसे वह सजल, हरा भरा और सम्पन्न बनाती जाती है। तो क्या वन मे रहते हुए मुझे भी कोई विशिष्ट कार्य नहीं करना चाहिए? मै भी तो इसी की भाँति घर त्यागकर यहाँ आया हूँ।

नदी एक धारा से बह रही है। इसकी धारा दूसरी ओर

नहीं जाती। ऐसा करके नदी हमें सिखाती है कि मेरी ही भांति सदा एक धारा रक्खो। मेरी माता की भी नदी की तरह एक ही धारा है। उनकी धारा केवल पिता की ही ओर है। लेकिन मुझमें कितनी धाराएँ हैं? नदी से मुझे सीखना होगा कि मेरे जीवन की भी एक ही धारा रहे।

मेरे यहां नदी के किनारे आने से पहले नदी जैसा शब्द कर रही थी, उसी प्रकार का शब्द मेरे आने के बाद भी कर रही है। जब मैं यहां से चल दूँगा तब भी यह ऐसा ही शब्द करती रहेगी। इसे किसी को खुश करने की चिन्ता नहीं है, निरंतर कार्य करते रहना इसका स्वभाव है।

सुन्दर जाने के मार्ग में बाधा उपस्थित करने वाले पत्थरों का—चट्टानों का—यह विरोध करती है। यह कहती है—'मेरे मार्ग से हट जाओ। मुझे जाने दो। दम भर भी ठहरने का मुझे अवकाश नहीं है।' इसमें अनन्त प्रवृत्ति-शीलता है! कितनी व्यापकता है! मनुष्य अगर इसी भावना के साथ कार्य में जुट पड़े तो सफलता में क्या संदेह है!

इस प्रकार नदी तथा वन की अन्य वस्तुओं से शिक्षा लेता हुआ गांगेय अपने स्थान पर लौट गया। वह सोचने लगा—ऐसी सुन्दर और निर्दोष शिक्षा इस वन में मिलती है वैसी तो माता से भी नहीं मिली थी।

गंगा ने अपने पुत्र को आते देखा। उसकी सूक्ष्म दृष्टि से यह बात छिपी न रही कि आज मेरे पुत्र के चित्त में परिवर्तन

कुछ ज्यादा तेज है। वह पुत्र के सामने गई। लेकिन गंगा को देखते ही गंगकुमार कुछ उदास हो गया। यह देख कर गंगा ने उससे पूछा—पुत्र ! तुम अभी-अभी प्रसन्न होते आ रहे थे और यकायक उदास क्यों हो गए ?

गांगेय ने कहा—माता, मुझ पर आपका उत्कट स्नेह है। माता के स्नेह और अनुग्रह का बदला नहीं चुकाया जा सकता। बदला चुका देने का विचार करना भी मूर्खता और कृतघ्नता है। माता के असाधारण ऋण को तो माथे पर ओढ़े रहने में ही आनन्द है। फिर भी माता की सेवा तो करना ही चाहिए। पुत्र का यह धर्म है—कर्त्तव्य है। मैंने सुना था कि आप राजरानी हैं। लेकिन समय की कैसी गति है कि आपका सारा सुख चला गया है और आपको वन-वास भोगना पड़ रहा है। मै आपके कष्ट को दूर नही कर रहा हूँ। इसी विचार से मुझे उदासी हुई है।

गंगा—बेटा, तुमने मेरे चित्त मे क्या कभी उदासीनता या दुःख देखा है ?

गंग०—जब आप राजमहल में होंगी तो आपके शरीर पर उत्तमोत्तम वस्त्र और आभूषण सुशोभित होते होंगे। बहुत से दास और दासियाँ सेवा के लिए प्रस्तुत रहती होंगी। यहाँ केवल लज्जा की रक्षा के लिए ही शरीर पर वस्त्र है और आभूषण तो कोई है ही नहीं। क्या यह दुःख नहीं है ?

कल्पना कीजिए, आपके सामने सीता के दो चित्र हैं। एक विवाह के समय का चित्र है, जिसमें वह सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से सजी हुई है। दूसरा चित्र वन जाते समय का है। इस चित्र में सीता के शरीर पर न तो बहुमूल्य वस्त्र हैं, न आभूषण हैं। आप इन दोनों चित्रों में से किसे पसंद करेंगे? आपको विवाह के समय का चित्र ही अच्छा लगेगा। लेकिन याद रखना कि सीता अगर शृङ्गार करके राजमहल में बैठी रहती तो आज सती सीता के रूप में उसे कोई याद न करता। आज इतने समय बाद भी सीता की जो प्रतिष्ठा है, वह उसके त्याग के कारण ही है। गंगा क्या उत्तर देती है, यह देखिए।

गंगकुमार के कथन के उत्तर में गंगा ने कहा—तू अभी अबोध बालक है। गहनों और कपड़ों के अभाव में तू मुझे दुखी समझता है, यह तेरी भूल है। अगर मैं इनके लिए दुखी होती तो स्वेच्छा से उनका त्याग ही क्यों करती? मुझे किसी ने राजमहल से निकाला नहीं है। मैं स्वयं चली आई हूँ। और इच्छा होने पर आज भी सब सामग्री प्राप्त हो सकती है। फिर भी मैं उसे नहीं चाहती। जब जिसे चाहती ही नहीं, उसके अभाव में दुखी क्यों होऊँगी? गहने-कपड़े नारी का सच्चा आभूषण नहीं है। नारी का श्रेष्ठ आभूषण शील है। मैं शील का पालन करके अपने को धन्य मानती हूँ और तू समझता है कि मैं दुखी हूँ।

गंगा का कथन सुनकर गंगकुमार मौन रहा। उसने सिर्फ यही कहा—वास्तव में मै भूला हुआ था, जो तुम्हें दुखी मान रहा था। अब मै ऐसा कभी नहीं कहूँगा।

गंगा ने कहा—कहने की ही बात नहीं, बात सोचने की भी है। ऐसा न कहना ही पर्याप्त नहीं है वरन् ऐसा सोचना भी नहीं चाहिए। बेटा, जड़ शृंगार को शृंगार मत समझ। आत्मा को शील से सिंगारना ही सच्चा शृंगार है। अच्छा, अब यह बता कि तू कहाँ गया था और जहाँ गया था वहाँ से क्या लाया है ?

गंग०—आपने ही तो कहा था कि प्रकृति से शिक्षण ग्रहण कर। सो मै प्रकृति से शिक्षा लेकर आया हूँ।

गंगा—ठीक है, पर मुझे तो बता कि क्या शिक्षा लेकर लौटा है ?

गंग०—एक तो आपकी शिक्षा है और दूसरी वन में जो वेगवती नदी बहती है, उसकी शिक्षा है।

वर्षा ऋतु में तो सभी नदी-नाले बह निकलते हैं, लेकिन जेठ के महीने में भी नदी बहती रहती है, उसी की क़द्र होती है। गंगा और यमुना जेठ मास में भी बहती रहती हैं, इसीलिए उनकी क़द्र की जाती है। इसी प्रकार अच्छे समय में तो सभी धर्म करते हैं, लेकिन संकट के समय में धर्म पर दृढ़ रहने वाला धर्मात्मा कहलाता है।

गंगकुमार कहता है—माता, इसलिए मैंने नदी से यह

शिक्षा ली है कि संकट के समय में भी अपनी धारा एक-सी बहती रहनी चाहिए। मैंने तुलना की तो आपकी और नदी की धारा एक-सी है।

गंगकुमार के कथन पर आप भी विचार कीजिए और संकट के समय भी धर्म पर दृढ़ रहिए। ऐसा होने पर ही आप धर्म का पालन कर सकेंगे।

गंगा ने कहा—पुत्र! तूने अच्छी शिक्षा ली है। नदी की तरह और भी बहुत-सी चीजें हैं, जिनसे उत्तम शिक्षा मिलती है। तू उनसे मिलने वाली शिक्षा को हृदय में स्थान देना।

बालक को प्रोत्साहन देने से उसका उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता है। निरुत्साह बनाने से बालक का उत्साह क्षीण होता चलता है और उसकी कार्य करने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

नदी की भाँति वृक्षों से भी बहुत शिक्षा मिलती है। मैंने एक पञ्जाबी को गाते सुना है—

मन! वृक्षन की नाई ले रे!
काटन वाले से द्वेष नहीं कछु।
सींचन वाले से न स्नेह रे॥

वृक्ष काटने वाले से द्वेष नहीं करता और सींचने वाले पर स्नेह नहीं करता। वह दोनों को समान रूप से छाया देता है। इसी कारण महाभारत में वृक्ष को अजातशत्रु कहा है। वृक्ष किसी को अपना शत्रु मानता ही नहीं है। वृक्ष से क्या सीख ली जा सकती है, यह बात एक दृष्टान्त द्वारा

समझना सुगम होगा।

कल्पना कीजिए, एक आदमी किसी वृक्ष के पास से उदास चित्त से जा रहा था। उस वृक्ष के अधिष्ठाता देव ने उसे अपने पास आने को कहा। उस आदमी ने कहा—मैं अपनी चिन्ता में जा रहा हूँ। तुम्हारे पास आने का मुझे समय नहीं है। अधिष्ठायक या मान लो कि वृक्ष ने उसे कहा—जाते तो हो ही, एक बात मेरी सुनते जाओ। उस आदमी ने उत्तर दिया—मैं बहुत आदमियों की बात सुन चुका हूँ। मुझे कोई लाभ नहीं हुआ। वृक्ष ने कहा—अभी तक तुमने स्वार्थी लोगों की बात सुनी है। एक बात मेरी भी सुन लो।

इतना आग्रह देखकर वह आदमी वृक्ष के पास गया। वृक्ष ने पहले तो उसे फल दिये, जिन्हें खाकर वह प्रसन्न हुआ। फिर उसने आदमी से पूछा—तुम्हें सुख चाहिए न?

आदमी ने कहा—हाँ, सुख के लिए ही तो भटक रहा हूँ।

वृक्ष—तो देखो, सुख देने में सुख है, सुख लेने में सुख नहीं है। सुख माँगने से सुख नहीं मिलता है। लोग सुख की भीख माँगते फिरते हैं, सुख के लिए भिखारी बने फिरते हैं, इसी कारण उन्हें सुख नहीं मिलता। हम वृक्षों को ही देखो न। हम किसी से सुख की याचना नहीं करते। चाहे कोई हमें काटे या सींचे, हम दोनों पर समभाव रखते हैं। दोनों को समान भाव से छाया देते हैं। इसलिए हम तुम्हारी

तरह दुखी नहीं हैं। अगर तुम दूसरों को सुख देने में लगे रहो तो दुख से छुटकारा पा जाओगे। तुम्हारे दुख का कारण यही है कि तुम सुख माँगते फिरते हो।

जब पेड़ भी दूसरों को इस प्रकार सुख पहुँचा सकता है तो आप क्या दूसरों को सुख नहीं दे सकते ? जब आप वृक्ष रहे होंगे, तब आपने भी यही किया होगा। मगर आप का विकास हो गया है---आपको वृक्ष की अपेक्षा अधिक विकसित चेतना, शरीर और वाणी प्राप्त हुई है, इस कारण आप स्वार्थ में डूब गये हैं। आप किसी को अपनी छाया भी नहीं देना चाहते ! यही नही, आप ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं, दूसरों की छाया छीन कर अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं !

आपके पूर्वज कितने रुपये कमाते थे और आज कितने कमाये जा रहे है ? एक सज्जन कहते थे---पहले के लोग अगर पच्चीस रुपये कमा लेते थे तो समझते थे कि अच्छी कमाई हो गई ! लेकिन आज तो पच्चीस रुपया की कोई गिनती ही नहीं है ! पच्चीस रुपया में साधारण काम भी नही निकलता। इसका कारण यही है कि आपने अपनी आवश्यकताएँ बेहद बढ़ा ली हैं। यही कारण है कि आज बड़े-बड़े कारखानों से भी लोगों को संतोष नहीं है, जब कि पुराने लोग थोड़े में ही सन्तुष्ट हो जाते थे।

वृक्ष ने उस आदमी से कहा—हमारा आधार आकाश-वृत्ति है। आकाश से पानी बरस गया या पृथ्वी से पानी मिल

गया तो बस उसी से हमारा काम चल जाता है। इसके अतिरिक्त हमारा और कोई आधार नहीं है। लेकिन मै देने को सदैव तत्पर रहता हूँ। मेरे पास जब फल होते हैं तो देने में कमी नहीं रखता। समस्त फल दूसरों को ही देता हूँ। अपने काम में एक भी फल नहीं लेता। जब फल नहीं होते तब भी थके-मांदे पथिकों को छाया देता हूँ। संध्या समय प्रतिदिन आश्रय खोजने के लिए आये हुए पक्षियों को अपनी गोदी में छिपा लेता हूँ। इस प्रकार में अपना सर्वस्व देने के लिए सदैव उद्यत रहता हूँ।

वृक्ष कितना उपकारी है! आजकल तो जङ्गल ही उजाड़े जा रहे है। लेकिन वृक्षों को नष्ट करने से मानव-समाज की भलाई नहीं हो सकती। आजकल के वैज्ञानिकों की मान्यता के अनुसार भी मनुष्य की छोड़ी हुई कार्बोलिक वायु को, जो ज़हरीली होती है, वृक्ष ग्रहण करते हैं और बदले में ऑक्सिज़न वायु-प्राणवायु-देते हैं। अर्थात् वृक्ष रोग खींचकर स्वास्थ्य देते हैं। ऐसे उपकारी पेड़ों को नष्ट करने पर स्वास्थ्य अच्छा कैसे रह सकता है?

जो वृक्ष को काटता है उसे भी वह छाया देता है; पर आप अपने विषय में सोचिए कि आप क्या करते हैं? आप किसी को कटुक वचन तो नहीं कहते? नम्रतापूर्वक बोलते हैं? नम्र वचन से जो काम हो सकता है उसके लिए कठोर वचन कहना कितना अनुचित है? मीठे वचनों की कोई कमी तो है

नहीं। फिर कठोर और कष्टकर वचन कहने से क्या लाभ है ? कहावत है—'वचने का दरिद्रता ?' तुलसीदास ने कहा है—

तुलसी मीठे वचन तें सुख उपजे चहु ओर।
वसीकरण इक मत्र है, तज दे वचन कठोर ॥

मीठे वचनों से सब को सुख होता है। जब वृक्ष भी किसी को ज़हर नहीं देता, वरन् दूसरों का ज़हर लेकर उन्हें 'प्राण' देता है, तब आप दूसरे को ज़हर के समान कटुक वचन क्यों सुनाते हैं ?

कई लोग कहते हैं कि मीठा बोलना कपट है। मगर कपट तो तब कहा जा सकता है जब मन में कुछ और हो तथा वचन से कुछ और कहे। सही बात ज्यों की त्यों कह देना कपट नहीं है। मगर सही बात मधुर शब्दों में कही जा सकती है। उसके लिए कटुक शब्दों की क्या आवश्यकता है ? वाणी मनुष्य की कसौटी है। मनुष्य की महत्ता और हीनता, शिष्टता और अशिष्टता वाणी में तत्काल झलक जाती है। अतएव संस्कारी पुरुषों को बोलते समय बहुत विवेक रखना चाहिए।

वृक्ष कितना सहनशील है ! सर्दी-गर्मी आदि को धैर्य के साथ सहन करता है और स्वयं ज़हर खाकर अमृत देता है। आप मकान में बैठे हैं, उसमें लगी हुई लकड़ी कहाँ से आई है ? आपका झाड़ों से बिना काम नहीं चलता। फिर भी कभी सोचते है कि हम भी झाड़ से कुछ सीखें !

वृक्ष ने उस चिन्तातुर पथिक से कहा---'तुम निराश मत होओ। मैंने जो कहा है उसे अमल मे लाओ। अच्छी से अच्छी औषध भी अमल में लाये विना लाभ नहीं पहुँचाती। मै कहता नहीं फिरता, करके दिखलाता हूँ और लोग कहते हैं पर करते नहीं। इसी कारण मै दुखी नहीं हूँ और लोग दुख की गठरी बाँधे फिरते है।

आप भी जो सुनते हैं उसे सुनते ही रहेंगे या कुछ करके भी दिखलाएँगे? केवल सुनने से कुछ न होगा। उसे सफल करने से ही फल प्राप्त होगा। मै जब सुनूँगा कि अमुक के घर में जो झगड़ा था, वह मेरे व्याख्यान से शान्त हो गया है, तब यह समझूँगा कि मेरा व्याख्यान देना और आपका व्याख्यान सुनना सफल हुआ है। अन्यथा कैसे माना जा सकता है?

वृक्ष का कथन सुनने से उस पथिक को नई समझ आ गई। मानों वह अब तक अधकार में भटक रहा था और अचानक प्रकाश दिखाई दे गया।

गंगकुमार कहता है—माता, मुझे वृक्ष से भी ऐसी शिक्षा मिली है!

गंगा—बेटा, वृक्ष से मिलने वाली शिक्षा का तो कहना ही क्या है। मुनियों को शास्त्र में जो शिक्षा दी गई है, उसमें एक बात यह भी है कि उन्हें वृक्ष के समान बनना चाहिए। वृक्ष दूसरों के आघात सहकर भी उनका कल्याण ही करता है।

हम मुनि हुए हैं, अगर वृक्ष की तरह आघात पहुँचाने वाले का कल्याण न कर सके तो फिर मुनि कैसे ?

इस प्रकार गंगकुमार वन से मिलने वाली शिक्षा का वर्णन गंगा के सामने करता है और गंगा उसे पुष्ट करती जाती है।

अगर गंगा में सांसारिक भोग-विलास की कामना होती तो प्रथम तो वह पति का घर न छोड़ती, कदाचित् आवेश में आकर छोड़ दिया होता तो पिता के घर रह कर भी मौज़ कर सकती थी। कदाचित् दोनों घर छूट जाते तो वन में जाकर उसे रोना आता। मगर गंगा के निर्मल और वासना-विहीन चित्त में धर्म की भावना थी। इस धर्मभावना के प्रताप से वह वन में भी आनन्दपूर्वक रहती है। ऐसी वीरता जिसमें होती है वही धर्म का पालन कर सकता है।

गंगा सोचती थी---और लोग तो धोखा दे सकते हैं मगर जंगल धोखा नहीं दे सकता। यही कारण है कि महापुरुष सब कुछ त्यागकर जंगल में रहते हैं---वे अरण्य को ही शरण्य मानते हैं।

जितने भी महापुरुष हुए हैं, प्रायः सभी ने गृह त्याग कर वन का आश्रय लिया है। भगवान् महावीर ने भी वन का आश्रय लिया था। लेकिन आज जंगल वर्बाद किये जा रहे हैं और शहर आबाद किये जा रहे हैं।

शहर के संकीर्ण स्थान में अत्यधिक आदमियों के रहने

के कारण स्वास्थ्य की कितनी हानि होती है ? अगर आपके शरीर का सारा रक्त एक ही जगह इकट्ठा हो जाय तो कितनी हानि होगी ? जहाँ ज्यादा आदमी रहते हैं वहीं ज्यादा पाप भी होता है। जितने लुच्चे-लफंगे और शराबी बम्बई और कलकत्ता आदि बड़े शहरों में मिलेंगे, देहातों में नहीं मिल सकते।

गंगकुमार ने नदी और वृक्ष से जो शिक्षा ली है, उसका उल्लेख किया जा चुका है। एक दिन गंगकुमार वन से उदास लौटा। गंगा ने प्रेमपूर्वक पूछा—बेटा, आज तुम उदास क्यों हो ?

गंग०—आज जङ्गल में मैंने बड़ा आश्चर्य देखा है।

गंगा—क्या आश्चर्य देखा ?

गंग०—मैंने एक फला-फूला आम का वृक्ष देखा। उसी के पास एक बबूल का पेड़ था। मानो दोनों आपस में बातें कर रहे थे। उस आम के वृक्ष को देखकर मुझे तुम्हारी याद आ गई।

गंगा—लेकिन मेरी याद आने से तू उदासीन क्यों हुआ ?

गंग०—आम्रवृक्ष की हालत से तुम्हारी हालत मिलती-जुलती है। लोग आम्र-वृक्ष को तोड़ लेते है और ऊपर से उसे लकड़ी-पत्थर भी मारते हैं। दूसरी ओर बंबूल था, जिसे कोई छूता भी नहीं था। मैंने उन दोनों को देखा, जैसे आपस में दोनों यही बातें कर रहे थे।

गंगा—बेटा, तुझमें विवेक और कल्पना तो है परन्तु अभी उसका पूरी तरह विकास नहीं हुआ है। अच्छा बता तो सही, तेरी कल्पना के अनुसार उन दोनों में क्या बातचीत हो रही थी ?

गंग०—आम, बंबूल से कहता था—'देखो भाई, मैं कितना दुखी हूँ। मैं सबका उपकार करता हूँ, फिर भी लोग मुझे मारते हैं। लेकिन तुम कितने सुखी हो ? तुम्हें कोई नहीं सताता। क्या मीठे-मीठे फल देना ही मेरा कोई अपराध है ?' आम, बंबूल से ऐसा कह रहा था।

गंगा—पुत्र, तूने आम के गुण को औगुण समझ लिया है। लेकिन अच्छा है कि तू अपने विचारों को मेरे सामने प्रकट कर देता है। इस तरह आपस में चर्चा करने से तेरा भ्रम दूर हो जायगा और तू वास्तविकता तक पहुँच सकेगा।

गंगा फिर कहने लगी—बेटा, तू जिन कारणों से आम को दुखी मानता है, वह बातें तो आम के गुण हैं। सभी मानते हैं कि मनुष्य को जगद्वन्द्य बनना चाहिए। अब तू विचार कर कि आम जगद्वंद्य है या बंबूल ? जगत् उसी को वन्दना करता है जो जगत् के आघात सहन करता हुआ भी जगत् के उपकार में ही अपना सर्वस्व लगा देता है। आम यही करता है। तुझे भी ऐसा ही करना चाहिए। आम और बंबूल में क्या अन्तर है, यह जानने के लिए सोचना चाहिए कि थका हुआ पथिक दोनों में से किसके पास जा'''।

किसकी छाया का आश्रय लेगा? वह आम के पास ही जायगा, क्यों कि उसके नीचे कॉटे नहीं होते, उसकी छाया गहरी होती है और ऊपर पके फल होते है तो वह फल भी देता है। फल न हों, मंजरी हो तो वह सुगंध देता है। उसके नीचे बैठने वाले को भ्रमर अपनी गुंजार सुनाते हैं। कोयल अपनी मधुर ध्वनि सुनाती है। इस प्रकार वहाँ पहुँचकर पथिक प्रसन्न हो जाता है, उसकी थकावट हट जाती है और उसमें नवीन उत्साह तथा स्फूर्ति आ जाती है। इन्हीं गुणों के कारण आम वन्दनीय समझा जाता है। जो वन्दनीय बनना चाहता है उसे आघातों से नहीं डरना चाहिए। आघातों से डरने वाला कुछ भी नहीं कर सकता। बेटा, तू आम से यह शिक्षा ले। आघात सहकर भी जगत् का उपकार कर। आघात से भयभीत मत हो।'

गंग०--माता, मैं समझ गया। वास्तव में आपने बहुत सुन्दर विवेचन किया है।

गंगा ने जो शिक्षा दी है, वह सिर्फ गंगकुमार के लिए नहीं है—सभी के लिए है। मिश्री किसी एक के लिए मीठी नहीं होती--जो उसे खाता है उसी का मुँह मीठा हो जाता है। अगर आप आम की तरह आघात सहने के लिए तैयार रहेंगे तो आपके घर में कलह के कॉटे उत्पन्न न होंगे। इसके विपरीत, अगर आप बंबूल के समान बनेंगे तो आपकी बदौलत धर्म की भी अवहेलना होगी और हमारी भी निन्दा

होगी। आपके सुकृत्यों से आपके धर्म की और धर्मगुरुओं की 'प्रतिष्ठा बिगड़ती है। यह बात आपको सदा स्मरण रखनी चाहिए।

गंगकुमार कहने लगा—माता, मुझे भी आम अच्छा लगता है, बंबूल नहीं। आपने बिल्कुल सत्य कहा है।

गंगा—ठीक है। अगर तुझे आम अच्छा लगता है तो तू भी आम के समान बनना। यह सिद्धान्त ध्यान में रखना कि—'जो बात मुझे अपने लिए पसन्द है वही मै दूसरों के लिए करूँ।'

विपत्ति, सम्पत्ति के रूप में किस प्रकार परिणत हो सकती है, यह बात इस कथा से सहज ही समझ में आ सकती है। गंगा अपने पुत्र को लेकर वन में रहती है। वह इस स्थिति में तनिक भी घबराती नही, ऊबती नहीं। साहस के साथ परिस्थिति का सदुपयोग कर रही है। आज की दुखित विधवाओं से गगा मानो कह रही है कि—तुम्हारा पति मर गया है, लेकिन मै तो अपने पति को छोड़कर आई हूँ। फिर भी मै शान्ति और धैर्य के साथ अपना समय व्यतीत कर रही हूँ। तुम क्यों निरन्तर आर्त्तध्यान करके अपने भविष्य को मलीन बनाती हो? एक न एक दिन विधवा बना देने वाले पति को रोती हो, इसके बदले अचल सौभाग्य देने वाले परम-पति (परमात्मा) के चरणों में अपना शरीर और मन क्यों समर्पित नही कर देतीं? ऐसा करने से वर्त्तमान

जन्म ही नहीं, असीम भविष्य उज्ज्वल हो उठेगा। इसके विरुद्ध गई वस्तु के लिए रोने से क्या हाथ आने वाला है!

इस प्रकार जगत् को ज्योति दिखलाती गंगा वन में संतोष के साथ निवास करती है। वह गगकुमार को प्रकृति से सजीव शिक्षा दिला रही है। गगकुमार के लिए वन ही पाठशाला है, मौन प्रकृति ही शिक्षक है, वन-वृक्ष, कलरव करने वाले वहाँ के पशु-पक्षी एव नदी-नाले ही उसके साथी-संगी हैं। प्रकृति की पाठशाला में जड़-ज्ञान नहीं दिया जाता। वहाँ कल्पना सजीव है, कला सप्राण है, सौन्दर्य जागृत है। वास्तव में वन की शिक्षा बड़ी प्रभावजनक होती है। नगर के स्कूलों की प्राणहीन, नीरस और जबर्दस्ती बालकों के गले उतारी जाने वाली शिक्षा वन-शिक्षा का मुकाबिला नहीं कर सकती। वन की शिक्षा शिष्य में नूतन कुतूहल, नवीन जिज्ञासा, नयी उमंग, उत्साह, रुचि और प्रीति उत्पन्न करती है। स्कूल की शिक्षा विद्यार्थी की स्वाभाविक जिज्ञासावृत्ति पर बोझ बनकर गिरती है और उसे नष्ट कर डालती है। विद्यार्थी में अरुचि उत्पन्न करती है और उसके उत्साह को ठंडा कर देती है।

भगवान् महावीर, बुद्ध, राम और कृष्ण आदि महापुरुषों को वन से ही शिक्षा मिली थी। जब यह सब महापुरुष वन से नहीं घबराये तो और किसी के घबराने की क्या बात है?

...र की दशा बिगड़ने पर लोग वन को तो जाते हैं, लेकिन

कभी वन की वायु विकृत होने के कारण वन-वासियों को शहर में आना पड़ा है ?

गंगकुमार ने वृक्षों से नम्रता और सहनशीलता भी सीखी। नदियों से सतत् क्रियाशीलता और लक्ष्य की ओर बढ़ते जाने की उत्कंठा सीखी। कोयल से मधुर वाणी सीखी। फूलों से प्रसन्नता सीखी। जैसे अधेरा होने पर भी फूल विकसित रहता है, उसी प्रकार विपत्ति पड़ने पर भी प्रसन्न रहने की शिक्षा ली।

विपत्ति आने पर भी प्रसन्न रहने से विपत्ति भी सम्पत्ति बन जाती है। ऐसे समय प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए परमात्मा का शरण लेना चाहिए। परमात्मा का शरण लेने पर विपत्ति मनुष्य को पीड़ित नहीं कर सकती, रुला नहीं सकती, वरन् रोते को धैर्य मिलता है, सान्त्वना मिलती है और सहने की क्षमता मिलती है। यह सब मिलने पर विपत्ति, विपत्ति नहीं रह जाती। उसे सह लेना साधारण बात हो जाती है। अर्जुन को रोना आ रहा था परन्तु कृष्ण के वचन सुनकर वह हँसने लगा था। अतएव विपत्ति को जीतने के लिए परमात्मा का शरण ग्रहण करना चाहिए।

संसार में संगीत में माधुर्य, मोहकता और आकर्षण लाने के लिए अनेक साधनों का आविष्कार हुआ है और अब भी होता रहता है, किन्तु कोयल के संगीत की समता किसी ने नहीं की। वृक्ष के नीचे चाहे राजा आया या रंक आया हो,

कोयल अपना स्वर नहीं बदलती। वह राजा के सामने विशिष्ट स्वरसंधान नहीं करती। राजा के चले जाने पर भी उसका स्वर वही का वही कायम रहता है। कोयल नहीं सोचती कि अब मैं किसे गाना सुनाऊँ? इस प्रकार कोयल के स्वर में स्वातन्त्र्य है। उसका राग असाधारण और अप्रतिबद्ध है। गंगकुमार ने कोयल से यह निस्पृहता सीखी और वाणी की मधुरता की महिमा सीखी।

गंगकुमार आकाश को देखकर सोचता—आकाश असीम और अनन्त है। वह मानो संकेत करता है कि-'ऐ मनुष्य! तू भी अनन्त है। पर अपनी अनन्तता को भूला हुआ है। उसको स्मरण कर और अनन्त बन जा। तेरे ही नाप ने मुझे अनन्तता प्रदान की है।'

आकाश अनन्त है, यह बात मनुष्य के ज्ञान से ही जानी जाती है। कोई आकाश में कितनी ही तीव्र और चिरकाल पर्यन्त गति करे, क्या वह आकाश का अन्त पा सकता है? ऐसी अनन्तता का जो ज्ञान जानता है वह क्या कम रहा? वह आकाश से भी बड़ा ठहरा। फिर उस ज्ञान को विकसित करने के लिए शिक्षा क्यों नहीं लेते? इस शिक्षा का महत्त्व बहुत अधिक है। इसी शिक्षा के प्रताप से गंगकुमार आगे चलकर 'भीष्म पितामह' कहलाए।

कहते हैं, एक बार भीष्म से किसी ने कहा-'आप विवाह करलें तो आपके पुत्र भी आप सरीखे होंगे।' इसके उत्तर में उन्होंने कहा था—मेरे पुत्र मेरे समान ही वीर होंगे, यह

कौन कह सकता है? लेकिन मै जो ब्रह्मचर्य पाल रहा हूँ, उसके कारण सारा संसार मेरा पुत्र है। मेरे आदर्श का अनुसरण करने वाले न जाने कितने वीर संसार में हो सकते हैं। इसलिये मेरी संतान की अपेक्षा मेरा आदर्श ही जगत् के लिए अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होगा।

गंगकुमार में यह उच्च संस्कार वन की बदौलत ही उत्पन्न हुए थे। गंगकुमार में आकाश को देखकर अनन्तता की भावना उत्पन्न हुई। वह समझ गया कि मै भी अनन्त हूँ। आकाश की अनन्तता को जानने वाला क्या आकाश से कम हो सकता है? आत्मा के विषय में कहा है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

अर्थात्-कायरों को आत्मा की उपलब्धि नहीं होती।

आत्मा की उपलब्धि दृष्टा की वृत्ति से होती है। गंगा ने अपने पुत्र में ऐसी ही वृत्ति जागृत करने का प्रयत्न किया। इसी उद्देश्य से उसने वन की शिक्षा का आयोजन किया। जिसकी भावना उच्च होती है, संयोग उसे वैसे ही मिल जाते हैं। इसके अनुसार गंगकुमार को भी वन मे उच्च संयोग प्राप्त हुआ।

धर्म-देशना दिवी मुनि ने सुनी कुंवर धर ध्यान।
समकित सह वह धर्म अहिंसा का पाया है ज्ञान॥
आ के बात सब कही मात से, वह भी हर्षी जान।
सब मिल...... .... भीष्म की॥

गंगकुमार ने प्रकृति से अनेक उत्तमोत्तम गुण सीखे। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति प्रायः वन में ही होती है। आज के लोग तो पुस्तकें रटकर ज्ञानी बनना चाहते हैं, पर प्राचीन काल के महापुरुषों ने वन से ही तत्त्वज्ञान सीखा था।

गंगकुमार एक दिन वन में भ्रमण कर रहा था। वहाँ उसने ध्यान में मग्न एक चारण मुनि को देखा। मुनि को देखकर वह उनकी ओर आकर्षित हुआ। सोचने लगा—मैं समझता था कि मैं ही वन में सीखने आया हूँ, लेकिन जान पड़ता है कि यह महात्मा भी इसी उद्देश्य से यहाँ आये हैं। इनका चेहरा कैसा सौम्य है और आकृति में तेज फूटा पड़ता है। इच्छा होती है, चलकर इनके पैर पकड़ लूँ।

जब अन्तर्दृष्टा अपने स्वरूप में रमण करता है—अपने आपे के अनुभव में डूबा होता है तो बाह्य स्वरूप भी इतना सौम्य हो जाता है कि सिंह और हिरन जैसे जन्म-विरोधी पशु भी उसकी गोदी में लोटते हैं और अपना स्वाभाविक वैरभाव भूल जाते हैं। उन्हें पूर्ण अभय मिलता है। आन्तरिक प्रभाव के कारण ही इस प्रकार की निर्वैरवृत्ति प्राणियों में उदित होती है। समवसरण में सब जीव निर्भय क्यों हो जाते हैं? भगवान् के आकर्षण से। भगवान् की आन्तरिक शक्ति दूसरे जीवधारियों की हिंसावृत्ति को कुंठित कर देती है। थोड़ी देर के लिए वे अहिंसा की स्निग्धता में डूब जाते हैं।

जैसे लोहा चुम्बक की ओर आकर्षित होता है उसी प्रकार

गंगकुमार चारण मुनि की ओर आकर्षित हुआ। वह मुनि की ओर गया और उनके समीप पहुँचकर उनके पैरों पर गिर पड़ा। मुनि बड़े दयालु थे। उन्होंने सोचा—मै इस वन में आया हूँ और यह बालक यहाँ मेरे पास आया है। अतएव इसका कुछ उपकार करना चाहिए। यह सोचकर मुनि ने गंगकुमार को उपदेश दिया।

लोहा ही चुम्बक की ओर आकर्षित होता है और लोहा ही पारस के संसर्ग से सोना बन सकता है। जो लोहा ही नहीं है वह कैसे तो चुम्बक से खिंच सकता है और कैसे पारस के स्पर्श से सोना बन सकता है ? इसी प्रकार जब वक्ता भी हो और श्रोता भी हो, तभी उपदेश सुनने-सुनाने की प्रवृत्ति होती है। किसी एक के होने से काम नहीं चलता। और अगर वक्ता तथा श्रोता दोनों ही सुपात्र हों तब तो कहना ही क्या है !

उन चारण मुनि ने किन शब्दों में गंगकुमार को उपदेश दिया था, यह तो नहीं कहा जा सकता, क्यों कि शास्त्र में कहीं उसका उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी कल्पना करके वह बतलाया जा सकता है। मुनि ने कहा—

'वत्स ! तुम नगर मे होते तो तुम्हारी मुझ से भेंट होती या न होती, यह संदिग्ध है। लेकिन इस वन के प्रताप से तुम्हारी मेरे साथ भेंट हुई। तुम किसी विशेष कारण से वन रहते होगे या आये होगे, पर हम मुनियों के लिए तो एकान्त

में रहना ही बतलाया गया है। और इस कारण महात्मा प्रायः वन मे ही रहते हैं। मै अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिए ही नगर में जाता हूँ।'

भगवान् महावीर के पधारने का जहाँ कहीं वर्णन किया गया है, वहां यही कथन है कि भगवान् अमुक बाग में पधारे। श्रेणिक और अनाथी मुनि की मुलाकात भी वन में हुई थी। इस प्रकार विवेकवान् को वन में जैसा लाभ होता है, नगर में नहीं होता।

मुनि ने गंगकुमार से कहा—'हे वत्स ! तू मेरे पास आया है, इसलिए मै तुझे दो शब्द सुनाता हूँ। तू मेरे शब्दों को ध्यान से सुन।'

जो ज्ञान का पात्र होता है वही ज्ञान को झेल सकता है। कुपात्र ज्ञान को पचा नहीं सकता। यहाँ पात्र और उपदेशक दोनों ही योग्य थे। पात्र गंगकुमार है और उपदेशक हैं आकाश में उड़ने की शक्ति रखने वाले चारण मुनि। यह किसी प्रकार के बंधन में नहीं रहते। लेकिन उनकी शक्ति केवल उन्हीं के लिए नही होती। वे अपनी समस्त शक्तियाँ आत्मकल्याण के साथ जगत् के कल्याण में व्यय करते हैं।

उन मुनि में किसी प्रकार का कल्पित पक्ष नहीं था और न वन में ही किसी प्रकार का पक्ष था। वन की बात जाने भी दीजिए और जिस मकान में आप बैठे हैं, उसी मकान की बात सोचिए। यह मकान पक्ष नहीं करता कि मै अमुक को

बैठने दूँगा और अमुक को नहीं बैठने दूँगा। जब मकान ऐसा पक्ष नहीं करता तो यह किसका माना जय? ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि मकान किसी का नहीं है, कुदरत के नियम का है। ऐसा होते हुए भी अगर कोई मनुष्य मकान के लिए अभिमान करता है तो उसका अभिमान मिथ्या है। जो वस्तु अभिमान त्यागने का बोध देती है उसी को अभिमान का कारण बना लेना कितना अनुचित है? मकान सभी को आश्रय देता है फिर भी मनुष्य उसे सिर्फ अपना मानकर घमण्ड करता है!

स्त्रियाँ भोजन बनाकर अभिमान करती हैं कि हमने बनाया है। लेकिन यह अभिमान क्यों? आटा, आग, पानी और लकड़ी यह अभिमान नहीं कर सकते? क्या इनके बिना भोजन बन सकता है? फिर भी जब यह सब वस्तुएँ अहंकार नहीं करतीं तो बहिनें क्यों अभिमान करती हैं? अगर भोजन बनाने वाली बहिनें ऐसा विचार करें तो बहुत लाभ हो सकता है। 'हाय मेरे माथे पर कितना काम का भार है—घर भर का काम मुझे ही करना पड़ता है,' इस प्रकार अहंकारमिश्रित दुःख प्रकट करने से हानि ही होती है। कई स्त्रियाँ घड़ी भर सामायिक में बैठने में तो आनन्द मानती हैं, लेकिन किसी बीमार की सेवा करनी पड़े तो बड़ी कठिनाई और मुसीबत समझती हैं। वह कहने —
मेरा दिन तो मल-मूत्र उठाने में ही जाता है!

लिए ही कहा गया है—

हुं करूं हुं करू एज अज्ञानता,
शकटनो भार ज्यों श्वान ताणे।

सोचना तो यह चाहिए कि जगत् का कोई भी काम मेरे बिना नहीं रुक सकता। जब मैं नहीं था तब भी सब काम होते थे और जब मैं न होऊँगा तब भी सब काम बदस्तूर जारी रहेंगे। ऐसी दशा में अहंकार करने का क्या कारण है?

मुनि ने गंगकुमार को ऐसा ही उपदेश दिया। मुनि का उपदेश सुनकर गंगकुमार ने निश्चय किया—अब से मैं यथाशक्ति सब जीवों की सेवा किया करूँगा। इस वन में जो पशु-पक्षी रहते हैं, उनके साथ भी मैं मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करूँगा?

भगवान् महावीर स्वामी ने आपको 'मित्ती मे सव्वभूएसु' का पाठ सिखाया है। अगर कोई आदमी यह समझता है कि जिसके साथ मेरा वैर है, उसके सिवाय दूसरे लोग मेरे मित्र हैं, तो क्या उसकी समझ इस प्रशस्त पाठ के अनुकूल है? मैत्री तो उन्हीं के साथ स्थापित करनी चाहिए जिनके साथ अभी मैत्री नहीं है—वैर है। अतएव प्राणी मात्र को परमात्मा के नाते अपना मित्र मानो। किसी के प्रति वैर-भाव मत रक्खो। यही वह मार्ग है जिससे परमात्मा के शरण में पहुँचा जा सकता है। अगर आप परमात्मा के ...ण में गये होंगे तो आपको अवश्य यह विचार आएगा

कि जैसे मैं परमात्मा का पुत्र हूँ, इसी प्रकार दूसरे प्राणी हैं। अतएव सभी जीव मेरे बन्धु और मित्र हैं। इसी विचार से परमात्मा का आश्रय मिल सकता है। बल्कि ऐसी भावना रखना ही परमात्मा का आश्रय पाना है। अतएव ऐसी ही भावना रक्खो और इस भावना को पहले अपने घर से ही आरंभ करो। घर के सभी लोग एक-सी प्रकृति के नहीं होते। प्रत्येक की प्रकृति में कुछ न कुछ भिन्नता होती ही है। उन सब की प्रकृति को देखकर चलना और समभावपूर्वक व्यवहार करना ही परमात्मा के मार्ग पर चलने का पहला कदम है।

गंगकुमार ने मुनि का उपदेश सुना। उपदेश सुनकर उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने सम्यक्त्व के साथ श्रावकधर्म ग्रहण किया। उसकी इच्छा मुनि के पास से हटने की नहीं हो रही थी, लेकिन मुनि एक जगह कब ठहरने वाले थे। समय पर मुनि चले गए। गंगकुमार वहाँ से लौटकर मन में मुनि का ध्यान करता हुआ अपने स्थान की ओर चला।

वनचर पशु भी गंगकुमार से करते अतिशय मेल।
सिंह-बाल और गंग-बाल मिल खेले दोनों खेल॥
देख अहिंसा का प्रभाव यह गंगा-चित में मेल।
सब मिल··· · भीष्म की॥

अहिंसा और उसके प्रभाव की बात गंगकुमार के हृदय में एक ही दिन के उपदेश से उतर गई। सुपात्र को एक ही बार का उपदेश पर्याप्त हो जाता है। खेत में एक बार बीज

और सीप में एक बार पानी का बूंद पड़ना काफी है। इसी प्रकार गंगकुमार के लिए एक बार का उपदेश ही पर्याप्त सिद्ध हुआ। वह वीर माता-पिता का पुत्र था। साथ ही गंगा ने उसके हृदय को अच्छे संस्कारों से संस्कृत किया था और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गंगा ने वन का आश्रय लिया था। इसी से गंगकुमार के हृदय में अच्छे संस्कार पड़े और मुनि का एक ही बार का उपदेश उसके हृदय में जम गया।

गंगकुमार प्रसन्न होता हुआ अपनी माता के पास पहुँचा। पुत्र को हर्षित देखकर गंगा ने पूछा—बेटा, आज तुम बहुत प्रसन्न दिखाई देते हो। क्या बात है ?

गंगकुमार—हाँ माता, आज मुझे बड़ा हर्ष है।

गंगा—बता तो सही, हर्ष की क्या बात है ? योग्य पुत्र अकेला हर्ष नही मनाता वरन् अपने माता-पिता को भी उसमें हिस्सा देता है।

गंग०—माताजी, आज वन में मुझे एक महात्मा पुरुष के दर्शन हुए। मैंने उनका उपदेश सुना है। उनका उपदेश क्या था, मानों समग्र प्रकृति पिण्डीभूत होकर मुनि के रूप में उपदेश दे रही थी। औरों के वचन तो वचन ही होते हैं पर उनके वचन *प्रवचन थे।

गंगा—पुत्र, तेरा जीवन धन्य हुआ। तेरे नेत्र सफल

*वचन और प्रवचन का भेद, पूज्य श्री के प्रकाशित व्याख्यानों में अन्यत्र स्पष्ट किया गया है।

हुए। तेरा यहाँ आना सार्थक हुआ। तू ने मुनिराज से जो उपदेश सुना है, उस पर पूरी श्रद्धा रखना। ऐसा करने से ही तेरा कल्याण होगा।

माता अपने बालक को जैसा चाहे बना सकती है। बालक को माता पर जैसा प्रेम होता है, दूसरों पर नहीं होता। यह बात दूसरी है कि कोई बाद में अपनी पत्नी के अधीन हो जाए लेकिन बचपन में तो माता पर उसे अखंड प्रेम और विश्वास होता ही है। कोई-कोई पुरुष जब संकीर्ण-वृत्ति वाली पत्नी के अधीन हो जाता है तो यह स्थिति उत्पन्न होती है—

बेटा झगरत बाप से कर तिरिया से नेहु।
बदाबदी यों कहत हैं, म हिं जुदा कर देहु।
मोहि जुदा कर देहु चीज सब घर की मेरी,
केती करूं खराब अकल बिगरेगी तेरी।
कह गिरिधर कविराय सुनो हो सज्जन मित्ता,
समय पलटता जाय बाप से झगरत बेटा।

इस प्रकार कई पुरुष आज अपने पिता से झगड़ने लगते हैं। लेकिन पहले के लोग माता-पिता का अत्यन्त आदर करते थे। आज अगर कोई बालक अपनी माता से झगड़ता है तो उसमें माता का भी उत्तरदायित्व है कि उसने उसे अच्छे संस्कार नहीं दिये। अच्छे संस्कार डालने पर ऐसी स्थिति नहीं आ सकती।

गंगा ने अपने पुत्र को मुनि के उपदेश पर पूर्ण श्रद्धा रखने के लिए प्रोत्साहन दिया। गंगा के प्रोत्साहन से अहिंसा पर उसे पूर्ण श्रद्धा हो गई। उसने पशुओं और पक्षियों पर भी मित्रता का भाव धारण किया। योगसूत्र के निर्माता पतञ्जलि ने कहा है—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

अर्थात्—जहाँ अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है वहाँ वैर नहीं रहता।

गंगकुमार के हृदय में भी अहिंसा की प्रतिष्ठा हुई। इस कारण वन के पशु-पक्षी भी उसे प्रेम करने लगे। हिरन निर्भय होकर उसके साथ खेलते और सिंह भी उससे स्नेह करते। अगर आप अपने अन्तःकरण की वैरवृत्ति को दूर कर देंगे तो क्रूर से क्रूर जीवों पर भी आपका असर पड़े विना नहीं रहेगा।

गंगकुमार के साथ सिंह के बालकों को क्रीड़ा करते देखकर गंगा की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने सोचा—'मुनिराज के मिलने से मेरा बेटा 'सिद्ध' (महात्मा) हो गया है। अब न इसमें वैरवृत्ति है, न भय की भावना है। मेरा वन-वास सफल हुआ और मैं कृतकृत्य हो गई।

किस समय कहाँ क्या होता है, यह सर्वसाधारण नहीं जान सकते। आप अभी धर्मस्थान में बैठे हैं। आपको क्या । कि घर पर क्या हो रहा है? लेकिन आपका अदृष्ट वहाँ

भी काम रहा है। आपका अदृष्ट जानता है, कि वहाँ क्या हो रहा है! अतएव केवल दृष्ट को ही पकड़ कर बैठना उचित नहीं है, किन्तु अदृष्ट पर भी विश्वास रखना चाहिए। अगर आप अहिंसा आदि पर विश्वास रक्खोगे तो आपका अशुभ अदृष्ट भी शुभ में पलट जाएगा। बहुत समय का अशुभ अदृष्ट थोड़े समय का हो सकता है और बहुत शक्ति वाला थोड़ी शक्ति वाला बन सकता है। अहिंसा के प्रताप से दुःख भी सुख बन सकता है और विष भी अमृत हो सकता है। आग भी शीतल हो सकती है और कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो सकता है। अतएव अहिंसा पर विश्वास रखकर दुःख से घबराना नहीं चाहिए किन्तु निश्चल भाव से सोचना चाहिए कि जो कुछ होता है, भले के लिए ही होता है।

गंगकुमार के हृदय में गंगा ने जो प्रकाश उत्पन्न कर दिया था, उसके कारण वह सोचा करता था—मैं इस शरीर का सदुपयोग करूँगा। इस प्रकार की भावना से प्रेरित होकर उसने सब जीवों के साथ मैत्री-संबन्ध स्थापित किया। एक के मन का प्रभाव दूसरे के मन पर पड़ता है। अगर अपने मन में वैर नहीं है तो दूसरे के मन का वैर भी शान्त हो जायगा। कदाचित् इसका अपवाद भी हो जाता है। सूर्य की किरणें सब पर समान रूप से पड़ती हैं, मगर चमकता वही है जिसमें चमक होती है। जिसमें स्वाभाविक चमक नहीं है वह सूर्य की किरणों का संयोग पाकर भी नहीं चमक सकता।

इसके लिए सूर्य को दोष नहीं दिया जा सकता। इसी प्रकार शायद कभी आपके मन की पवित्रता का प्रभाव दूसरे पर न भी पड़े, लेकिन जैसे किसी पदार्थ के न चमकने पर सूर्य अपना प्रकाश देना बंद नहीं कर देता, उसी प्रकार किसी दूसरे पर प्रभाव न पड़ने के कारण आपको अपना मन अपवित्र न होने देना चाहिए। अपने मन को अपवित्र मत होने दो-सदा पवित्र रक्खो और पवित्रता में अगर कोई त्रुटि हो तो उसे खोजकर दूर कर दो। मन अगर प्राणीमात्र के प्रति वैरविहीन हो गया तो समझ लो कि तुम कल्याण के निकट पहुँच गये।

स्वभावतः क्रूर और हिंस्र समझे जाने वाले पशु भी गंगकुमार के मित्र बन गये। जब गंगकुमार ने ऐसे हिंसक जीवों से भी मित्रता स्थापित कर ली तो क्या आप अपने घर के लोगों से, अपने कुटुम्बी जनों से भी मैत्री संबंध नहीं जोड़ सकते? गंगकुमार ने वन के पशुओं को भी अपना कुटुम्बी माना और उनके प्रति प्रेम प्रदर्शित किया तो आप जिन्हें जन्मतः अपना कुटुम्बी समझते हैं, क्या उनके प्रति भी प्रेम प्रदर्शित नहीं कर सकते? दूसरों के दोष मत देखो। अपनी भावना शुद्ध करो। दूसरों के दोष खोजते रहना अपनी भावना मलीन बनाना है। शुद्ध भावना के साथ कब तक वैर बनाये रक्खोगे? जब आपकी भावना शुद्ध होगी तो जड़ प्रकृति और चेतन प्रकृति पर आपका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।



९

पिता-पुत्र का संघर्ष

——:: ():::——

अब जरा हस्तिनापुर की ओर ध्यान दीजिए। यह कहा जा चुका है कि राजा शान्तनु, गंगा और गगकुमार के वियोग से दुखी हो गया। पहले तो उसने अपने साथियों के कहने में लगकर और कुछ-कुछ अपने पुरुषत्व के अभिमान में आकर अपनी प्रतिज्ञा भग कर डाली, मगर पीछे वह बहुत पछताया। वह सोचने लगा—मैं नहीं जानता था कि गंगा अपनी प्रतिज्ञा पर ऐसी अटल रहेगी। ऐसा जानता तो मैं मृगया के लिए न जाता।

स्त्रियाँ चाहें तो पुरुषों को सुधार सकती हैं। वह त्याग करने को तैयार हों तो पुरुषों को बतला सकती हैं कि अपने विवाह के समय जो प्रतिज्ञाएं की हैं, उनसे हटना अब संभव नहीं है। मगर इसके लिए स्त्रियों में जिस त्याग भाव की आवश्यकता है, वह कहाँ है? आज उनमें त्याग की शक्ति क्षीण हो गई है, इसी कारण उन्हें पुरुषों का अन्याय सहन

करना पड़ता है। मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ में प्रायः देखा जाता है कि घर में सुन्दरी स्त्री होने पर भी एक 'खापण' लाकर बैठा दी जाती है। मगर स्त्रियाँ यह अन्याय क्यों सहन करती हैं? उन्हें जेवर और वस्त्रों का लोभ है। इस लोभ के कारण वे सब अन्याय सह लेती हैं। ऐसी स्त्रियों को गंगा के चरित पर ध्यान देना चाहिए। गंगा सरीखी स्त्री अपने पति को ठिकाने ला सकती है। वह प्रतिज्ञा की रक्षा करके अपनी दृढ़ता प्रकट करे तो पति की बुद्धि ठिकाने अवश्य आ जाए।

शान्तनु, गंगा के लिए पश्चात्ताप करता रहा। इस बात को बरसों बीत गये। राजा के साथियों ने उसे समझाया—आप इस तरह रानी के लिए दुखी बने रहेंगे तो लोक-हँसाई होगी और शत्रुओं का बल बढ़ेगा। इसके अतिरिक्त दुख मानने और पश्चात्ताप करने से कोई लाभ भी तो नहीं है। रानी जब चली जा चुकी हैं तो शोक करने से क्या लाभ?

बहुत से काम केवल लोक-लाज से किये जाते हैं। कई-एक सामाजिक नियम ऐसे हैं, जिनमें समय के अनुसार परिवर्त्तन होना आवश्यक है मगर परिवर्त्तन नहीं किया जाता है। वह लोगों के लिए भार रूप प्रतीत होते हैं। ऐसे नियमों का बाह्य रूप से पालन केवल लोकलाज के कारण ही किया जाता है।

लोक-लाज से या भय से या बात पुरानी पड़ जाने से

राजा का दुख कुछ कम हो गया। धीरे-धीरे वह राज-काज चलाने लगा।

मृगया-रसिकों के बहकाने से फिर बहके महाराज,
सोई हुई मृगया की भावना जागृत हुई पा साज।
चले जंगल में आये वहाँ जहँ खेले गग महाराज,
सब · ·····भीष्म की ॥
राय-जनों के कोलाहल से मृग सब पाये त्रास,
इधर-उधर सब लगे दौड़ने आये आश्रम पास।
दीनानन को देख विचारे होकर कुंवर उदास,
सब · · · ···· ·· ···· ·· ······भीष्म की ॥
इन पशुओं को दु खित करने कौन है आया चाल,
मेरी शरण में ये सब हैं और मैं इनका रखवाल।
इन्हें त्रास पहुँचावेगा जो मैं हूं उसका काल,
सब · · ··· ······· · · भीष्म की ॥

शान्तनु के पुराने साथियों ने फिर उस पर डोरा डालना शुरु किया। वह कहने लगे—महाराज ! कायरता दिखलाना उचित नहीं है। मन मे कुछ भी हो, बाहर से तो वीरता ही दिखलानी चाहिए। घर में बैठे-बैठे उदासी रहती है। इसलिए वन में चलिए। मृगया मानसिक दुःखों की अमोघ औषधि है। मृगया करने से मन दुख विसर जाते है और स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

इस तरह बहकाने वाले लोगों से राजा ने कहा—पहले

तुम लोगों के कहने से, रानी की परीक्षा करने के लिए मै शिकार खेलने गया था। लेकिन ऐसा करने से मेरी ही परीक्षा हो गई और मै उसमें अनुत्तीर्ण रहा। मै जानता कि रानी सच-मुच ही चली जाएगी तो मै तुम्हारा कहना हर्गिज़ न मानता। जिस मृगया के कारण मुझे रानी को और राजकुमार को त्यागना पड़ा या उन्हें मुझे त्यागना पड़ा और जिसके कारण मै प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हुआ, क्या फिर भी मुझ से वह करवाना चाहते हो ?

राजा का यह उत्तर सुन कर मृगया-रसिकों ने कहा— महाराज ! अब न परीक्षा का प्रश्न है, न रानी की बात है और न प्रतिज्ञा का सवाल है। यह सब बातें कभी की समाप्त हो चुकीं। गई-गुजरी बातों को याद करके दिमाग को परेशान करने से कोई लाभ नहीं है। प्रत्येक नवीन दिन जीवन मे नवीनता लेकर आता है। इस नवीनता के वातावरण में ही हमें विचार करना चाहिए। अतीत को भुलाये बिना कोई सुख-चैन से नहीं रह सकता। अतएव पुरानी बातें मस्तिष्क में से निकाल फेंकिए और वन की खुली हवा में सैर कीजिए। ऐसा करने से मन पर लदा हुआ भारी बोझ हल्का हो जाएगा।

दुर्व्यसन की बात बहुत जल्दी अच्छी लगती है। अगर वह अभ्यस्त हो तो फिर कहना ही क्या है ? वह तो और भी जल्दी समझ में आ जाती है। राजा अपने साथियों की

घातों मे आ गया और उसने मृगया की तैयारी आरम्भ करने की आज्ञा दे दी।

मृगया की तैयारी हो गई। राजा के साथी राजा को आगे करके मृगया के लिए वन में पहुँचे। सब शिकारियों ने वन के पशुओं को बड़ा त्रास पहुँचाया। यद्यपि क्षत्रियों का धर्म निर्बलों की सहायता करना है मगर दुर्व्यसन के कारण और पहले के कुसंस्कारों के कारण मनुष्य अपने धर्म को भूल जाता है और निर्बलों को भी सताने लगता है। राजा और उसके साथियों ने वन के दीन-हीन पशुओं पर अत्याचार करना आरंभ किया। वन पशुओं में घबराहट फैल गई। वह अपनी रक्षा का स्थान खोजने लगे। पशु-पक्षी भी जानते हैं कि किसके पास या किस स्थान पर जाने से उनकी रक्षा होगी। और वे ऐसी जगह चले भी जाते हैं। तदनुसार वन के पशु भाग-भाग कर गंगकुमार के पास आये।

भयभीत पशुओं को देखकर गंगकुमार सोचने लगा—आज यह पशु इतने बेचैन और त्रस्त क्यों है? जान पड़ता है, मुझसे अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। आज तक इस वन में पशुओं को किसी ने नहीं सताया। कभी कोई भूल-चूक से शिकार के लिए यहाँ आया भी तो मेरा नाम सुनकर चला गया। पशुओं को किसी ने पीड़ा नहीं पहुँचाई। फिर आज ऐसा कौन आया है जो इन बेचारों को सता रहा है?

जिस ओर से पशु भागे चले आ रहे थे, गंगकुमार उन्हीं

बातों में आ गया और उसने मृगया की तैयारी आरंभ करने की आज्ञा दे दी।

मृगया की तैयारी हो गई। राजा के साथी राजा को आगे करके मृगया के लिए वन में पहुँचे। सब शिकारियों ने वन के पशुओं को बड़ा त्रास पहुँचाया। यद्यपि क्षत्रियों का धर्म निर्बलों की सहायता करना है मगर दुर्व्यसन के कारण और पहले के कुसंस्कारों के कारण मनुष्य अपने धर्म को भूल जाता है और निर्बलो को भी सताने लगता है। राजा और उसके साथियों ने वन के दीन-हीन पशुओं पर अत्याचार करना आरंभ किया। वन पशुओं में घबराहट फैल गई। वह अपनी रक्षा का स्थान खोजने लगे। पशु-पक्षी भी जानते हैं कि किसके पास या किस स्थान पर जाने से उनकी रक्षा होगी। और वे ऐसी जगह चले भी जाते हैं। तदनुसार वन के पशु भाग-भाग कर गंगकुमार के पास आये।

भयभीत पशुओं को देखकर गंगकुमार सोचने लगा—आज यह पशु इतने बेचैन और त्रस्त क्यों हैं? जान पड़ता है, मुझसे अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। आज तक इस वन में पशुओं को किसी ने नहीं सताया। कभी कोई भूल-चूक से शिकार के लिए यहाँ आया भी तो मेरा नाम सुनकर चला गया। पशुओं को किसी ने पीड़ा नहीं पहुँचाई। फिर आज ऐसा कौन आया है जो इन बेचारों को सता रहा है?

जिस ओर से पशु भागे चले आ रहे थे, गंगकुमार उसी

ओर चल दिया। उसे किंचित् भी भय नहीं था। जो स्वयं भयभीत होगा वह दूसरों का भय कैसे मिटा सकता है? दूसरों को अभय देने वाला स्वयं निर्भय होना चाहिए।

इतने मे एक रथ को देखा, बोला कुंवर तत्काल,
मेरी शरण में यह सब है मत मारो तुम भूपाल।
शरणागत की रक्षा करते क्षात्र धर्म प्रतिपाल,
सब ' ' ' ' ' भीष्म की ॥

राजा शांतनु शिकार के रंग में रँगकर पशुओं पर बाण बरसा रहा था। उसके अनेक साथी पशुओं को राजा के सामने लाने के लिए हल्ला कर रहे थे। वनपशु घबराहट के मारे इधर से उधर भाग रहे थे।

विचारणीय बात है कि पशुओं को कष्ट में देखकर गंगकुमार एक भी क्षण का विलंब किये तत्काल उनकी रक्षा के लिए दौड़ पड़ा। क्या यह पशु उसके कोई रिस्तेदार थे? आप ढीलापन लाकर कह देंगे-छोटों के लिए बड़े से वैर मोल लेना ठीक नहीं है। मरते हैं तो वह मरते हैं। अपना क्या लेते हैं'? लेकिन गंगकुमार ऐसा सोचने वाला कायर नहीं था। उस ने पशुओं के कष्ट को अपना ही कष्ट माना और उसे नष्ट करने के लिए झटपट चल दिया।

शांतनुकुमार शिकार के रंग में रँगा हुआ था और गंगकुमार रक्षा के रंग में रँगा हुआ था। वह पशुओं को सताने वाले की खोज में निकला था। इतने में उसकी दृष्टि एक रथ पर

और उसमें बैठे हुए राजा पर पड़ी। रथ देखते ही वह समझ गया कि यह कोई राजा है। यद्यपि रथ में बैठा शांतनु गंगकुमार का पिता था, फिर भी उनमें से कोई किसी को नहीं पहचानता था। गंगकुमार को यह जानकर भी कि यह राजा है, किसी प्रकार की झिझक नहीं हुई। उसने सोचा— राजा है तो रहे। सच बात कहने में डर क्या है? और जब यह पशु मेरे शरण में आये हैं तो इनकी रक्षा करना मेरा धर्म है।

गंगकुमार ने शान्तनु के सामने जाकर कहा—महाराज, विराम! विराम! यह सब पशु मेरे शरण में आये हैं, इसलिए आप इन्हें मत मारिए। यह केवल जीवनदान चाहते हैं और कुछ नहीं चाहते। आप राजा हैं। इतना तो सोचिए कि आपका इनके प्रति क्या कर्त्तव्य है? आपका कर्त्तव्य इनकी रक्षा करना है, मारना नहीं। इन्हें मारने के लिए तो पधिक लोग हैं ही। आपको तो इनका रक्षक होना चाहिए। अतएव इन्हें मारने में आप जो पराक्रम दिखला रहे हैं, वह पराक्रम इनकी रक्षा में दिखलाइए।

गंगकुमार के कथन के उत्तर में राजा कहता है:—

नाहर तुम बैठो आश्रम में मत बोलो नादान,
मेरे घाव के भोग बनोगे यदि न मानो बात।
बालहत्या तो मुझे लगेगी यों बोला राजान॥
सब . . . भीष्म की॥

गंगकुमार का कथन सुनकर राजा मानों चौंक उठा। सोचने लगा--यह बालक कौन है? इस तरह निर्भीकता के साथ बोलने वाला इस वन मे यह बालक कहाँ से आया? इसके वचनों मे तेज है, निर्भयता है। पर यह कैसा दुस्साहस कर रहा है कि मुझे राजा समझ कर भी रोकता है। फिर राजा ने सोचा--अभी नादान है। इसे विवेक नहीं हैं। इसी से ऐसा कहता है।

इस प्रकार सोचकर राजा ने पूछा--तुम कौन हो? कहाँ रहते हो?

गंगकुमार ने अपने स्थान की ओर संकेत करके कहा--मै वहाँ रहता हूँ।

राजा--मैने उस स्थान का पट्टा तुम्हें कब लिख दिया है? खैर, रहते हो तो रहो। पर बाकी जगह पर तो मेरा अधिकार है। मै जो चाहूँगा, करूँगा। तुम यहाँ से भाग जाओ। अपनी जगह बैठो। मेरा कहना न माना तो यह बाण देख लो। तुम्हारे लिए एक ही बाण काफी होगा। तुम अभी बालक हो। तुम्हे देखकर दया आती है। नहीं तो किसकी मज़ाल है कि वह मुझे रोकने का साहस करता। जाओ अपनी जगह चले जाओ।

अगर आप शक्ति का संचय करके साहस से काम लें तो बहुत लाभ हो सकता है। लेकिन लोगों में शक्ति होती है फिर भी साहस के अभाव में वह काम नहीं आती।

साहस होने पर आपमे जितनी शक्ति है, उसी से बहुत कुछ हो सकता है।

मेरे बचपन की बात है। मेरा जन्म जिस गॉव मे हुआ था, उस गॉव-थांदला—की नदी मे मछलियाँ मारने की मनाई थी। वहाँ एक अगरेज मछलियाँ मारने के लिए आया उस ज़माने मे अगरेज को भला कौन रोके? मगर कुछ साहसी लोग वहाँ के हाकिम के पास पहुँचे। हाकिम को सब बात कही। हाकिम को साथ लेकर लोग अगरेज के पास गये। हाकिम ने उससे कहा—यह ज़मीन यहाँ के महाजनों के अधिकार में है और इस कारण यहा मछलियाँ मारने की मनाई है। अगरेज़ ने कहा—'अच्छा, ऐसा है?' और वह वहाँ से चला गया।

यह एक साधारण-सी मिसाल है। पर उस समय देहात के लिए यह भी साहस का काम था। तात्पर्य यह है कि साहस रखने से बहुत काम हो सकते हैं। साहसी के सामने देवता भी नम्र हो जाते हैं। गंगकुमार साहस के कारण ही राजा के सामने गया और उनसे पशुओं को न मारने के लिए कह सका। यों देखो तो कहाँ राजा शान्तनु और कहाँ बालक गंगकुमार! शान्तनु का एक ही बाण उसका अन्त कर सकता था। वहाँ गंगकुमार की सहायता करने वाला कौन था? मगर उसमें साहस था। गंगा और मुनि की शिक्षा से वह समझ गया था कि मरना

वात नहीं है। यह तो प्रकृति का साधारण नियम है। मरने पर ही नवीन जन्म मिलता है। फिर मरने से डरने की क्य आवश्यकता है?

राजा के कथन के उत्तर में गंगकुमार कहता है:—

बालहत्या के महापाप से तो डरते भूपाल,
शरणागत तृणभक्षक पशुओं के बनते क्यों काल?
रक्षक भी भक्षक होवे तो बिगड़े जग का हाल,
सब ... ... भीष्म की॥

राजा के कथन के उत्तर में गंगकुमार बोला—'महाराज! आपको इतना विचार तो है कि बालक की हत्या नहीं करनी चाहिए। इसी कारण आप मेरी हत्या नहीं कर रहे हैं। अर्थात् आप यह सोचते हैं कि बराबरी वाले के साथ लड़ाई की जाती है—बच्चे से क्या लड़ना? और मैं भी आपसे यही कहता हूँ। मैंने यही तो कहा है कि बराबरी वालों के सामने आप अपना पराक्रम प्रकट कीजिए। यह जङ्गल के पशु आपकी बराबरी के नहीं हैं। इनके पास कोई हथियार नहीं है। फिर आप इन्हें क्यों मार रहे हैं? आप क्या इन्हें अपनी बराबरी के समझते है? मुँह से तृण ले लेने वाले शत्रु को भी क्षत्रिय क्षमा कर देते हैं। तो जो पशु सदैव मुँह में तृण दबाये फिरते हैं उन्हें मारना क्या बहादुरी है? आपका धर्म तो यह है कि इनकी रक्षा करने में आवश्यकता हो तो सर्वस्व भी लगा दें। लेकिन आप इसके विरुद्ध इनके प्राण ले लेने पर उतारू हो

राजा, गंगकुमार की युक्तियुक्त बात का उत्तर नहीं दे सका। अतएव वह अपनी सत्ता का उपयोग करने लगा। वह बोला—'छोटा सा बालक है, फिर भी तू डरता नहीं? यह नहीं जानता कि तू किसके सामने बोल रहा है! किसे क्षात्र-धर्म सिखला रहा है! तू यह भी नहीं देखता कि तुझे क्षात्र-धर्म सिखलाने का अधिकार भी है या नहीं? क्षात्र-धर्म मैं समझ सकता हूँ या तू? छोटे मुँह बड़ी बात शोभा नहीं देती। जान पड़ता है, तू मुझे जानता नहीं। इसी कारण इतना बकवाद कर रहा है। मैं कोई साधारण व्यक्ति नहीं—प्रतापी राजा हूँ। यह भूमि मेरे अधिकार में है। इसलिए तू चुपचाप यहाँ से खिसक जा। अपनी माता की गोदी में बैठ।'

दूसरा कोई होता तो राजा का यह रौबदार परिचय सुनकर दब जाता और सोचता कि मैं बैठे-बिठाये किस से भिड़ गया। लेकिन वह गंगकुमार था। बहुत-से लोग ऐसा अभिमान करते हैं कि हमारे सामने कौन बोल सकता है? जो हम कहते हैं वही सही है। जिसे हम पूर्व दिशा कहें वही पूर्व दिशा है। लेकिन इस प्रकार के अभिमान का प्रभाव जिस पर पड़ता है, उसी पर पड़ सकता है। राजा को भी ऐसा अभिमान हुआ। पर गंगकुमार पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। गंगकुमार क्या कहता है?—

नहीं धीरता होती बचपन में नरपति महाराज,
इन वचनों को छोड़ दिखाओ मुझको अपना काज।

वस्था के संस्कारों पर कितने ही नवीन संस्कार आते-जाते रहते हैं, मगर उन्हें वे नष्ट नहीं कर सकते। गंगकुमार के उदाहरण से यह बात सहज ही समझ में आ सकती है कि बालक पर किस प्रकार के संस्कार डालने चाहिए। गंगकुमार के कोमल चित्त पर सर्वप्रथम माता ने ही अहिंसा के संस्कार अंकित किये थे। मुनि का समागम तो बाद में हुआ और थोड़ी देर के लिए ही हुआ। उन्हीं संस्कारों से प्रेरित होकर उसने प्रतापी राजा शान्तनु से कहा था—जब आप मुझ पर दया दिखलाते हैं तो क्या यह गरीब पशु आपकी बराबरी के हैं? आप सचमुच दयालु हैं तो इन पर भी दया कीजिए।

गंगकुमार का कथन सुनकर शान्तनु सोचने लगे—यह किसका लड़का है जो इस प्रकार निर्भयता से बातें करता है! इसने मेरी बात का ऐसा उत्तर दिया है कि मुझे निरुत्तर कर दिया। बालक सुन्दर और तेजस्वी है। इसकी आकृति में मेरा प्रतिबिम्ब-सा झलकता है। लेकिन यह मेरा मोह है। मेरा पुत्र यहाँ कैसे हो सकता है? मेरा पुत्र महारानी गंगा के साथ है और महारानी यहाँ कहाँ? यह कोई दूसरा क्षत्रिय बालक होना चाहिए। अन्त में राजा ने कहा—

किसके सामने बोल रहा है रे बच्चे नादान,
छोटे मुंह से बड़ी बात कहना यह है अज्ञान।
राजनपति राजा मैं हूँ युद्धवीर बलवान,
सब··· ······· ··· ········ भीष्म की॥

राजा, गंगकुमार की युक्तियुक्त बात का उत्तर नहीं दे सका। अतएव वह अपनी सत्ता का उपयोग करने लगा। वह बोला—'छोटा सा बालक है, फिर भी तू डरता नहीं? यह नहीं जानता कि तू किसके सामने बोल रहा है! किसे क्षात्र-धर्म सिखला रहा है! तू यह भी नहीं देखता कि तुझे क्षात्र-धर्म सिखलाने का अधिकार भी है या नहीं? क्षात्र-धर्म मैं समझ सकता हूँ या तू? छोटे मुँह बड़ी बात शोभा नहीं देती। जान पड़ता है, तू मुझे जानता नहीं। इसी कारण इतना बकवाद कर रहा है। मैं कोई साधारण व्यक्ति नहीं—प्रतापी राजा हूँ। यह भूमि मेरे अधिकार में है। इसलिए तू चुपचाप यहाँ से खिसक जा। अपनी माता की गोदी में बैठ।'

दूसरा कोई होता तो राजा का यह रौबदार परिचय सुनकर दब जाता और सोचता कि मैं बैठे-बिठाये किस से भिड़ गया। लेकिन वह गंगकुमार था। बहुत-से लोग ऐसा अभिमान करते हैं कि हमारे सामने कौन बोल सकता है? जो हम कहते हैं वही सही है। जिसे हम पूर्व दिशा कहें वही पूर्व दिशा है। लेकिन इस प्रकार के अभिमान का प्रभाव जिस पर पड़ता है, उसी पर पड़ सकता है। राजा को भी ऐसा अभिमान हुआ। पर गंगकुमार पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। गंगकुमार क्या कहता है?—

नहीं शोभा होती वचन से राजनपति महाराज,
इन वचनों को छोड़ लिखदो तुमको कहना काज।

तुच्छ भेद मन होगी गर्दिश बन जाओ मृगराज,
सब · · · · · · · · भीम की ॥

गंगकुमार ने राजा से कहा—महाराज, आपका रूप देख कर ही मैं समझ गया था कि आप राजा हैं। अपने मुख से अपना प्रशंसापूर्ण परिचय देने की कोई आवश्यकता न थी। आपको राजा समझते हुए भी मैं आपसे न्यायसंगत निवेदन कर रहा हूँ। न्याय की बात हर किसी के सामने कही जा सकती है। बल्कि आप राजा हैं, इसीलिए तो आपको मेरी बात माननी ही चाहिए। निरपराध और निर्बलों की रक्षा करना ही प्रधानतः राजधर्म है। मैंने जो कुछ कहा है, उसमें कोई गलतफ़हमी नहीं है। उसमें कूट-कूट कर सचाई भरी है। क्या आप यह नहीं सोचते कि राजा दूसरों की रक्षा के लिए होता है, घात करने के लिए नहीं होता। आप दीन-हीन पशुओं पर अपना पराक्रम प्रकट कर रहे हैं और राजा होने का अभिमान भी कर रहे हैं! यही आश्चर्य है। वीर पुरुष गरीब पशुओं से नहीं जूझता। इन्हें मारने में कोई वीरता नहीं है। अगर आप सचमुच वीर हैं तो अपनी वीरता मुझे दिखलाइए और पशुओं को जिन बाणों का लक्ष्य बना रहे हैं, उनका लक्ष्य मुझे बनाइए।

गंगकुमार की बात सुन कर राजा सोचने लगा—यह बालक मुझे चुनौती देता है। मुझे चिढ़ाता है! इसका अपराध तो अक्षम्य है, मगर न जाने क्यों इस पर मुझे स्नेह-सा

हो रहा है। इसकी इतनी उद्दडताभरी बातें सुनकर भी मेरे हाथ इसपर चलना नही चाहते! राजा ने प्रकट में कहा—बस, छोकरे! चुप रह। अन्यथा तेरी खैर नही।

गंगकुमार ने कड़क कर कहा—यह जीव मेरे आश्रित हैं। आश्रितों की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है—धर्म है। अपने कर्त्तव्य को पालन न करना कायरता है। मै कायर नही हूँ, जो अपने आश्रित प्राणियों की रक्षा न करूँ। मै अपने प्राण देकर भी इनकी रक्षा करूँगा। मेरे जीते जी इन पर प्रहार नहीं किया जा सकता।

गंगकुमार का कथन सुनकर राजा को भी क्रोध आ गया। फिर क्या था—

क्रोधित होकर जब राजा ने छोड़े कुँवर पर बाण,
सभी बाण को काट गिराये कुँवर बड़ा बलवान।
लगा बाण बरसाने वह भी राय हुआ हैरान,
सब .... भीष्म की॥
ध्वजा-पतन को देखे तब तक [illegible] टूट जाय,
युद्ध-वीर पूरा है बालक सोचे यों महाराय।
वात्सल रस में राचे राजवी मन में प्रेम अथाह,
सब मिल . . भीष्म की॥

आपने युद्ध के उदाहरण तो बहुत सुने होंगे, लेकिन पिता-पुत्र का यह युद्ध अनोखा ही था। और वह भी अपने आश्रित पशुओं की रक्षा के निमित्त।

गंगकुमार की अंतिम चुनौती से राजा का क्रोध भड़क उठा। उसने क्रोध में आकर गंगकुमार पर बाण छोड़ दिया। मगर गंगकुमार ने आते बाण को अपनी तलवार से काट डाला। राजा ने और भी बाण चलाए मगर गंगकुमार ने बड़ी फुर्ती के साथ सारे बाण काट फेंके। यह देखकर राजा चकित रह गया! सोचने लगा—मेरे बाण और इस तरह बेकार हो जाएँ! आज तक तो ऐसा कभी हुआ नहीं। कितने कौशल के साथ यह बाण काट डालता है! यह लड़का है कौन?

राजा इस सोच-विचार में पड़ा ही था कि गंगकुमार ने सोचा—यही अवसर है। इसी अवसर का लाभ उठाकर राजा को अपना पराक्रम दिखलाना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने पराक्रम दिखलाने का निश्चय किया। साथ ही उसने सोचा—मैं पशुओं की भी रक्षा करना चाहता हूँ तो क्या मनुष्य की हत्या करूँ?

वस्तुतः मारने की अपेक्षा मरने के लिए अधिक वीरता की आवश्यकता होती है। लेकिन कुत्ता-बिल्ली की मौत मरना वीरता नहीं, शेर की मौत मरने में अधिक वीरता है। कहा जा सकता है कि मरना कौन-सी बहादुरी है? पर ऐसा कहने वालों को सोचना चाहिए कि सात प्रकार के भयों में से जो मृत्यु के भय को जीत लेता है वह क्या वीर नहीं है? कम से कम साधुओं को तो मरने के विषय किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। कहा भी है—

फिकर सभी को खा गई,
फिकर सभी का पीर।
फिकर का फाका करे,
उसका नाम फकीर।

सोचना चाहिए कि मरता क्या है? आत्मा अजर, अमर अविनाशी है। उसकी मृत्यु नहीं, जन्म नहीं। मरता तो शरीर है। लोग कहते हैं—फलाँ मनुष्य मर गया। लेकिन साधु कहते हैं—जिसने मरणभय को जीत लिया वह अमर हो गया। जिसे ज्ञान हो गया है कि शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं—शरीर आत्मा नहीं है, वह मरने से भय क्यों करेगा? जिसका मकान पूरा-आदि से अंत तक-पक्का है, उसे मकान में आग लगने की चिन्ता क्यों होगी? वह सोचेगा—मेरा मकान पक्का है। उसमें आग प्रवेश नहीं कर सकती। इसी प्रकार जब आत्मा की अमरता का विश्वास हो जाता है तो मृत्यु का भय रह ही नहीं जाता।

१०

पति-पत्नी-पुत्र का मिलन

——::::()::::——

पिता-पुत्र को लडते देखकर आई पुत्र के पास,
किससे लडते हो तुम बेटा ! बोली गंगा खास ।
अपने पिता से कभी न लडना इससे होता नाश,
सब मिल························भीष्म की ॥
तेरे कहने से मैं मानूं ये हैं मेरे तात,
मम शरणागत को ये मारें कैसे जोडूं हात ।
शत्रु सम ये मुझे देखते सुन लो मेरी बात,
सब मिल························भीष्म की ॥
अतिशय क्रोधित देख पुत्र को गई पति के पास,
पिता-पुत्र का युद्ध देख कर मैं हो गई उदास ।
क्षमा करो अपराध नाथ ! यह पुत्र आपका खास,
सब मिल························भीष्म की ॥
निज पत्नी को देख अचानक स्तब्ध बने महाराय,
अति आदर दे मिले रानी से हर्षित हो सुख पाय ।

पिता कार्य को देख कुंवर भी आके शीश नमाय,
सब मिल···   ·   ···भीष्म की ॥
पति पुत्र का देख विनय रानी से पूछे बात,
कैसे आके रही यहां कहो सुत का सब वृत्तांत।
युद्ध-कुशल का देख बाल को चकित बना साक्षात,
सब मिल   ····   ·· ········ भीष्म की ॥
लेके पुत्र को गई पिता घर पड़ा वहीं पर बाल,
विद्याधर सुत इसके तेज को सह न सके तत्काल।
छोड़ पिता घर रहूं यहां पर सुखे बिताऊं काल,
सब मिल   ·   भीष्म की ॥
अठाविस योजन का मण्डल करके गंगकुमार,
सभी जीव की रक्षा करता भली भावना धार।
निज विद्या की करे आराधना कुंवर महा हुशियार,
सब मिल·   ········   · ········भीष्म की ॥
सब मिलकर अब चलें राज में करें मंगलाचार,
देख अहिंसा का प्रभाव मैं [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] न कोई [illegible] निराधार,
सब मिल   ·   · भीष्म की ॥
[illegible] को छोड़ के [illegible] [illegible] मैं [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
सब मिल····· ····· ·· ···· · भीष्म की ।

तुम बिन कैसे जाऊँ राज्य में शून्य लगे संसार,
गंगकुंवर को मात विरह से होगा दुःख अपार।
तुम आने से कुशल क्षेम हो सुधरे सब हुंकार,
सब ... .. ' भीष्म की ॥
मैं नहीं आऊँ राजमहल मे सुन लो मम महाराज,
मेरी प्रतिज्ञा पै कायम मैं करूं न दूजा काज।
त्याग प्रतिज्ञा सुख को भोगे उससे आती लाज,
सब " . . . .. भीष्म की ॥
घोर जंगल में छोड़ूं आपको भोगूं राज सुखसार,
ऐसा जीवन मै नहीं जीऊँ बोला गंगकुमार।
छोड मात की सेवा भोगे राज्य उसे धिक्कार,
सब . . .. भीष्म की ॥

इधर महल की छत पर खड़ी हुई गंगा यह दृश्य देख रही थी। बीच में पड़ना ठीक नहीं है, यह सोच कर थोड़ी देर वह चुपचाप देखती रही। लेकिन जब उसने अपने पुत्र की वीरता की परीक्षा कर ली और यह देख लिया कि राजा इस समय बहुत उलझन में पड़े हुए हैं, तब उसने गंगकुमार को शान्त करने का विचार किया।

गंगा तत्काल महल की छत से उतर कर नीचे आई। गंगकुमार के पास पहुँची। उसने पहुँचते ही कहा—'पुत्र, हो तो वीर मगर क्या पिता के साथ युद्ध करना चाहिए ?'

गंगकुमार चकित रह गया। कहने लगा—क्या यह मेरे

पिता हैं ?

गंगा—हाँ, बेटा ! यह तुम्हारे पिता हैं।

गंग०—मैं आपकी बात पर विश्वास करता हूँ, लेकिन क्षत्रियोचित शिक्षा आपने ही मुझे दी है। कोई भी क्यों न हो, जब वह शत्रु बन कर/सामने आया हो तो उसके साथ दूसरा सम्बन्ध कैसा ! इनकी दृष्टि में वन के जीव चाहे तुच्छ हों पर मेरी दृष्टि में तो वह महान् हैं। मैंने महाराज से प्रार्थना की कि यह जीव मेरे आश्रित हैं। इन्हें मत मारिये। मगर इन्होंने मेरी प्रार्थना की उपेक्षा की। इन्होंने यह भी कहा कि यह सब भूमि मेरी है। मैं तुझे दया करके रहने देता हूँ। लेकिन इन पशुओं के सम्बन्ध मे तुझे सोचने का अधिकार नहीं है। इतना ही नहीं, महाराज ने मुझे अपने बाणों की भी धमकी दी। बाण चला भी दिया। माँ, तुम्हारा कहना सच है कि पिता के साथ युद्ध करना उचित नहीं है। किन्तु मैं युद्ध के लिए विवश किया गया हूँ। मेरे पास और चारा क्या था ?

गंगा ने अपने पुत्र से कहा—पिता को देव के समान मानकर हाथ जोड़ने चाहिए। लेकिन तू पिता पर बाण चलाकर उनकी अवज्ञा करता है। पुत्र, यह तेरे लिए अनुचित है।

गंगकुमार बोला—माता, तुम्हारा कहना यथार्थ है। मुझे ऐसा ही करना चाहिए, जैसा तुम कहती हो। मगर इस समय जो प्रसंग उपस्थित है, उसे ध्यान में रखते हुए ऐसा

करना संभव नहीं है। मै किसी का अन्याय सहन नहीं कर सकता, फिर अन्याय करने वाला पिता ही क्यों न हो ! वैसे तो मुझसे जो बड़े हैं, सभी पिता के तुल्य हैं, लेकिन अन्याय का प्रतीकार करते समय यह संबंध नहीं रह सकता। इस समय राजा पिता नहीं शत्रु बन रहे हैं।

गंगा ने सोचा—गंगकुमार इस समय वीर-रस में डूबा हुआ है। वह मेरी सुनता नहीं जान पड़ता। अतएव पति के पास जाकर उन्हीं को समझाने का यत्न करूँ। मै उनसे जाकर कहूँगी कि पुत्र अगर अपना धर्म त्याग दे तो क्या पिता को भी अपना धर्म तज देना चाहिए ?

गंगा राजा शान्तनु के पास पहुँची। गंगा को आती देख शान्तनु सोचने लगे—यह कौन महिला मेरी ओर आ रही है? गंगा-सी जान पड़ती है। गंगा जब कुछ निकट पहुँची तो राजा ने उसे पहचान लिया। गंगा को पहचानने के साथ उसे यह भी ध्यान आ गया कि इसी वन में तो गंगा के साथ मेरा विवाह हुआ था ! जान पड़ता है, यह पराक्रमी बालक मेरा ही पुत्र है और इसी कारण मेरे हृदय में इसके प्रति स्नेह उमड़-उमड़ आता है।

गंगा जब समीप आ गई तो शान्तनु जैसे विह्वल हो उठा। उसके मुख से सिर्फ यही शब्द निकल सके—'गंगा, तुम यहाँ हो ?'

गंगा—'और महाराज यहाँ कैसे ?'

गंगा ने आगे कहना आरंभ किया—मै अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए आपके यहाँ से रवाना होकर पिताजी के घर पहुँची थी। वहाँ से आकर अब यहाँ रहती हूँ। यहाँ रहकर गंग-कुमार ने प्राणीमात्र के प्रति निर्वैर-भाव प्राप्त किया है। मै भी निर्वैर-भाव से रहती हूँ और पुत्र भी। मै आपसे यह प्रार्थना करने आई हूँ कि यह आपका ही पुत्र है। इस पर दया कीजिए। हो सके तो वन के इन पशुओं पर भी दया कीजिए।

गंगा का कथन सुनकर शान्तनु के हृदय में कैसे-कैसे भाव जागृत हुए, यह कहना कठिन है। उसके मानस-चित्रपट पर बड़ी तेज़ी के साथ उसके अतीत जीवन की घटनाएँ घूम गईं। वह अपराधी की तरह मन ही मन लज्जित हुआ और बहुत दिनों से खोये हुए पत्नी-पुत्र को सहसा पाकर प्रसन्न भी हुआ। उसने कहा—देवी, मै भाग्यशाली हूँ कि मैं तुम्हें और साथ ही अपने पराक्रमी पुत्र को देख सका। मै तुम्हारे वियोग से दुखी था। लेकिन आज की यह घड़ी बड़ी शुभ सिद्ध हुई कि तुम भी मिलीं और पुत्र भी मिला।

गंगा ने बीच में टोक कर कहा—मेरे प्रति आपका मोह वृथा है।

राजा—क्यों देवी, क्या जन्म भर रूठी रहोगी? क्या एक वार का मेरा अपराध क्षमा नही हो सकता?

गंगा—महाराज, आपका व्यसन गहरा है। वह छूट नहीं सकता। आप गंगा और मृगया में से मृगया को ही अधिक

प्यार करते हैं। अगर आपके हृदय में मेरे प्रति स्नेह होता तो मेरे वियोग में आपने यह व्यसन त्याग दिया होता। इसी से तो मैंने आशंका प्रकट की थी कि पुरुष अपने वचन का पालन नहीं कर सकते। वह जो कुछ कहते हैं, ऊपर से कहते हैं। मेरी यह आशंका आपने सत्य सिद्ध कर दी। लेकिन बातें फिर हो सकेंगी। आप थके हुए हैं। घर चल कर विश्राम कर लीजिए। रूखा-सूखा खा-पी लीजिए।

शान्तनु—तुम मेरे यहाँ चलने को राजी नहीं हो तो मै तुम्हारे साथ कैसे चल सकता हूँ?

गंगा—रहने भी दो! मै अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ हूँ, क्या आप भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ हैं? आपके यहाँ चलने से मेरी प्रतिज्ञा खंडित होती है, मगर मेरे यहाँ चलने से आपकी प्रतिज्ञा खंडित नहीं हो जाएगी। इसलिए चलिए, शेष बातें वहीं हो जाएँगी।

शान्तनु ने चिर-तृषित नेत्रों से गंगकुमार की ओर देखा। वह नीची दृष्टि किये बगल में खड़ा था। माता को जाने के लिए उद्यत देखकर उसने पिता की ओर अर्थ-भरी दृष्टि से देखा, मानो वह भी चलने की प्ररणा कर रहा था। इसके बाद गंगा के पीछे-पीछे पिता-पुत्र उसके निवास-स्थान की ओर चल दिये।

कुछ देर विश्रांति लेने के बाद राजा ने फिर वही प्रसंग छेड़ दिया। राजा कहने लगा—गंगा, अवश्य ही मै रास्ता

चूक गया हूँ। मगर चूक भी कभी-कभी भलाई के लिए होती है। मैं एक वार मृगया के लिए आया था, तब तुम्हें पा सका। अब की वार आया तो फिर तुम्हें पाया और साथ ही राजकुमार को भी। इस प्रकार इस मृगया के कारण ही मैंने तुम्हें पाया, खोया और फिर पाया है। अब तुम्हें पाकर खोने की इच्छा नहीं है। इसलिए अपने निर्णय पर एक वार फिर विचार करो। मैंने अपने कार्य के लिए वहुत पश्चात्ताप किया है।

पति के इस आत्म-निवेदन ने एक वार गंगा के हृदय में उथल-पुथल मचा दी। वह किंकर्त्तव्यमूढ़ हो गई। भावनाओं के तूफान से वह हिल गई। उसे सूझ नहीं पड़ता था कि राजा के इस कथन का वह क्या उत्तर दे?

विषय-वासनाओं ने गंगा को कभी परास्त नहीं किया। संयम सदैव उसके जीवन का सहचर रहा। जव वह हस्तिनापुर के राजमहल में थी, तव भी वह भोग-विलास की गुलाम नहीं वनी। यही कारण था कि क्षण भर के लिए भी उसके मन में दुविधा नहीं हुई और वह सहजभाव से राजमहल को त्याग कर चली आई। ऐसी थी गंगा, जिसने आसक्ति पर पूरी विजय पा ली थी।

आज राजा के पश्चात्ताप को देखकर भी उसके अन्तःकरण में मोह का स्पर्श नहीं हुआ। सिर्फ स्त्री सुलभ कोमल-भाव उसके हृदय में उत्पन्न हुआ, जिसे विकारहीन स्नेह, आसक्ति-

शून्य दया और मोहहीन ममता कहा जा सकता है। इस अवस्था मे भी गंगा आत्म-विस्मृत नही हुई। मोह उसके विवेक को सुप्त नही कर सका।

राजा के कथन का गंगा ने उत्तर दिया—'मुझे मालूम हुआ कि संसार में पश्चात्ताप ही सार है। संसार के सब पदार्थ निस्सार हैं। माता किसी दूसरे काम में लगने के लिए अपने बालक को खिलौना देती है। जो बालक खिलौने पर ललचा जाता है उसकी माता उसे छोड़कर चली जाती है। जो नहीं ललचाता उसकी माता उससे कैसे छूटेगी? संसार में पति, पत्नी, पुत्र आदि सब खिलौने हैं। इन खिलौनों पर ललचाने वालों से सिद्धि माता छूट जाती है। लेकिन जो इन खिलौनों का महत्त्व त्याग देता है वही सिद्धि-माता की शाश्वत सुखमयी गोदी में रमण करता है। यह बात मैंने समझ ली है। अब रानी बनने और संसार के सुख भोगने की इच्छा नहीं रही। अतएव महाराज! मेरी धृष्टता के लिए क्षमा करें।'

'हाँ, यह बालक आपका ही है। इस पर आपका अधिकार है, मेरा नहीं। मैने आपकी धरोहर के रूप में इसे संभाला है। अब आप अपनी धरोहर को संभाल सकते हैं। इस बालक को मैंने क्षत्रियोचित शिक्षा दी है। अपनी शिक्षा की परीक्षा वह दे ही चुका है। यह आपकी सेवा करेगा और राज्य की रक्षा भी करेगा। आप चाहे तो इसे ले जा सकते हैं। मैंने अपना दूसरा पथ चुन लिया है। जिस ओर जा रही हूँ,

उसी ओर जाने दीजिए। मेरा मोह छोड़िये। परमात्मा में मन लगाइए।

राजा ने कहा—देवी, मैं समझ गया कि तुम ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहती हो। इसमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन महल में चलकर रहो तो क्या बाधा है?

गंगा—ब्रह्मचर्य की साधना करने वालों के लिए वन-वास ही उचित है। वन की महिमा का मै बखान नहीं कर सकती। इसी वन में आपका और मेरा प्रथम मिलन हुआ था। इसलिए भी मुझे यही वन अधिक प्रिय है। मेरे लिए हस्तिनापुर और वन में कोई भेद नहीं रह गया है। राजमहल मेरे आकर्षण की चीज़ नही रहा।

शांतनु—देवी, तुम्हारे विचार अत्यन्त उच्च और पवित्र हैं। उन्हों ने मेरे हृदय में भी एक नवीन भावना उत्पन्न कर दी है। मै सोचता हूँ-अब मेरे लिए भी दूसरी पत्नी नहीं है।

गंगा—महाराज, कदाचित् ऐसा ही हो। मगर विषय-वासना की जड़ बड़ी गहरी होती है। उसे उखाड़ फेंकने पर ही विरक्ति स्थायी हो सकती है। मगर उसे उखाड़ फेंकना बड़ा ही कठिन काम है।

एक जगह पढ़ा था—किसी आदमी की पत्नी बीमार हुई। बीमारी की घबराहट मे स्त्री ने अपने पति से कहा—'नाथ, अब मै जाती हूँ।

पति ने कहा—अच्छा, मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हारे

सिवाय मेरी दूसरी पत्नी नहीं है।

पत्नी—यह तो सिर्फ कहने भर के लिए है।

पति—नहीं, मै सच कहता हूँ। तुम चाहो तो परीक्षा ले सकती हो। कहो तो तुमसे पहले ही अपने प्राण दे दूँ।

पत्नी—इस समय आपके वचनों में वीरता है, लेकिन आप इतनी ही कृपा करना कि मेरे रहते दूसरी स्त्री मत लाना।

कुछ दिनों बाद स्त्री स्वस्थ हो गई। दूसरी तरफ पति के पास कुछ धन बढ़ गया। धन बढ़ जाने पर पुराना मकान, पुराने मित्र और पुरानी पत्नी प्रायः अच्छी नहीं लगती। यही बात इस पुरुष के विषय में हुई। उसने अपनी पहली पत्नी के रहते दूसरा विवाह कर लिया। यह श्मशान का वैराग्य नहीं तो क्या है।

गंगा से निराश होकर राजा शांतनु अत्यन्त उदास, विषादमय और लज्जित हुए। अन्त में उन्हों ने गंगकुमार से हस्तिनापुर चलने के लिए कहा। गंगा ने भी राजा का समर्थन किया। लेकिन गंगकुमार ने कहा—'मै माता को जंगल में छोड़कर राज्य-सुख भोगने के लिए नहीं जा सकता। जिस माता ने मेरे लिए भीषण से भीषण कष्ट सहन किये हैं, आज उसे त्याग कर मै कैसे जा सकता हूँ ?,

गगकुमार की बात यथार्थ थी। दूसरी माता होती तो अपने पुत्र के मुख से यह बात सुनकर प्रसन्न होती। पर गंगा और ही तरह की माता थी। उसने सोचा—मेरा पुत्र

मेरी असलियत को, मेरे सामर्थ्य को, ठीक तरह नहीं जानता, इसी से ऐसा कहता है। इसे समझाना चाहिए। यह सोच-कर गंगा ने कहा—

मेरी रक्षा मैं ही करूंगी नहि कायर तू जान,
मात-मोह में पड़ कर तुझको होना नहीं बेभान।
पितु-सेवा औ राजकाज में तज दो तन धन प्रान,
सब भीष्म की ॥

गंगा कहने लगी—वत्स ! यद्यपि तेरे शब्दों में मातृभक्ति है, लेकिन साथ ही उनसे प्रकट होता है कि तू भ्रम में है। तेरे शब्दों से ध्वनित होता है, जैसे तू ही मेरी रक्षा कर रहा है! परन्तु यह तेरी भूल है। तेरे जन्म से पहले भी मै इस वन में रहती थी। उस समय मेरी रक्षा कौन करता था ? बेटा, मै तेरे जैसे वीर पुत्र की माता हूँ। मै कायर होती तो तू वीर कहाँ से हो जाता ? मेरे लिए रक्षक की आवश्यता नहीं है। मुझे अपनी रक्षा और सेवा की तनिक भी चिन्ता नहीं है। सिंहनी अपनी रक्षा आप कर लेती है। तू मुझे भी ऐसी ही समझ। मेरी रक्षा की चिन्ता छोड़ दे। प्रजा की रक्षा का भार अपने माथे ले और पिता का भार कम कर। प्रजा-पालन के अवसर पर माता की सेवा करने का बहाना करना कायरता है। प्रजा का पालन करना तेरा कर्त्तव्य है। अपने कर्त्तव्य को सँभाल। पिता के साथ जाकर अपनी सब शक्तियाँ प्रजा की रक्षा में व्यय कर। जब तेरे पिताजी को किसी प्रकार

का मोह हो तब उन्हें सावधान करना और ऐसा प्रयत्न करना कि उन्हें सुख और संतोष मिले।

माता की बात का गंगकुमार कुछ उत्तर नहीं दे सका। माता ने जिस ढँग से उसे पिता के साथ जाने का आदेश दिया, उसमें कहने-सुनने की कोई गुंजाइश न रही। गंगकुमार का हृदय मातृवत्सलता से गद्‌गद हो गया। उसने माता का आज जो स्वरूप देखा, पहले कभी नहीं देखा था। श्रद्धा से हृदय भर गया। वह माता के सामने नीचा सिर किये चुपचाप खड़ा रहा। सोचने लगा—माता क्या हैं, उत्सर्ग की देवी हैं। त्याग की प्रतिमा हैं। बलिदान की सजीव मूर्ति हैं। इनका आत्मोत्सर्ग कितना विराट और उत्कट है। साक्षात् शक्ति हैं। जगत् की रक्षा के लिए व्यग्र हैं और अपने प्रति निश्चिन्त निस्पृह और निरपेक्ष हैं। न जाने इनके व्यक्तित्व का निर्माण किन उपादानों से हुआ है! माता धन्य है और मै उनका पुत्र होने के कारण धन्य हूँ।

गङ्गा ने चेष्टा से समझ लिया कि गङ्गकुमार अब विरोध नहीं करेगा। उसने कहा—पुत्र, तू बुद्धिमान् है। फिर भी दो शब्द कहती हूँ। माता का हृदय है। कुछ दिये बिना वह पुत्र को विदा नहीं कर सकती। मेरे पास कोई ऐसी सौगात नहीं जो इस प्रसंग पर तुझे भेंट दे सकूँ। फिर भी मै जो कहती हूँ उसका आर्थिक मूल्य चाहे न हो, पर जीवन-संबंधी मूल्य बहुत है। इसलिए मेरी यह बातें तू मंत्र की तरह याद

रखना।'

गंगा अपने पुत्र को जो अंतिम उपदेश देना चाहती है, उसे सुनने से पहले आपको थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। गंगा और गंगकुमार की कथा सिर्फ उन्हीं के लिए नहीं है। उनका आपस का वार्त्तालाप उनके लिए नही वरन् आपके उपयोग के लिए ही है। भीष्म, पितामह कहलाते हैं। पितामह होने के नाते उनकी वस्तु सभी की विरासत में है। इस प्रकार गंगा के द्वारा उन्हे जो शिक्षा मिली है, वह शिक्षा भी आपके लिए है। आप उस शिक्षा को हृदय में धारण करो। और अपनी शक्ति के अनुसार अनुसरण करो तो निस्संदेह आपका कल्याण होगा।

गंगा का कथन सुनकर गंगकुमार उत्सुक होकर, हाथ जोड़कर नम्रता के साथ माता के सामने खड़ा हो गया। माता कहने लगी:—

मौन पकड जब रहे कुंवर, तब बोली माता हर्षाय,
ईश-भक्ति में मन रहे नित अहभाव न आय।
नम्र रहो अभिमान त्याग कर जिन-गुण नित ही गाय,
सब मिल · ······ · ·· ··· · भीष्म की ॥
दीन जनो पर प्रेम करो तुम सत्य वचन सुखकार,
सुत सम पालो सदा प्रजा को सज्जन जन सत्कार।
तुम ब्रह्मचर्य व्रत पालोगे तो होओगे भव-पार,
सब मिल ·· · भीष्म की ॥

यों तो यह पंक्तियाँ गंगकुमार के लिए गंगा कह रही है, परन्तु वास्तव में गंगा और गंगकुमार तो निमित्त हैं। उन्हें निमित्त बनाकर आपको यह उपदेश दिया गया है। गंगा ने गंगकुमार को क्या उपदेश दिया था, इसका कोई इतिहास नहीं है। फिर भी जो उपदेश हम पाते हैं, वह ऐसा उपदेश है कि सदाकाल उसकी समान रूप से आवश्यकता है। किसी भी काल में वह निरुपयोगी नहीं है, क्योंकि उसमें धर्म का तत्त्व समाया हुआ है और धर्मतत्त्व शाश्वत है। यह उपदेश अतीत काल में भी कल्याणकारी था और उसी तरह आज भी कल्याणकारी है। वह गंगकुमार के लिए भी उपयोगी था और आपके लिए भी उपयोगी है। इसलिए आप एकाग्र चित्त से उस पर विचार करें और फिर जीवन-व्यवहार में उतारें।

हाथ जोड़कर विनीत शिष्य की भाँति नम्र-काय खड़े हुए गंगकुमार से गंगा कहने लगी—हे पुत्र! मैंने तुझे जन्म दिया है और पाला-पोसा है। इसमें मेरी एक प्रधान भावना यह थी कि मै तेरे लिए जो कुछ कर रही हूँ उसका लाभ जगत् को मिले। अब तू पिता के साथ जा रहा है और संभव है कि राज्यसंचालन का उत्तरदायित्व भी तेरे सिर आ जाए, इसलिए मै उपदेश के तौर पर कुछ कहना चाहती हूँ।

'पहली और प्रधान बात यह है कि चाहे सुख का समय हो, चाहे दुःख का हो, चाहे सम्पत्ति हो या विपत्ति हो, परमात्मा को मत भूलना। परमात्मा को सदा याद रखना।'

घड़ी में एक बार चाबी भरी जाती है, फिर भी वह बहुत समय तक चलती रहती है। उसमें हर समय चाबी भरते रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। किसी घड़ी में दिन में एक बार, किसी में सप्ताह में, किसी में महीने में और किसी में वर्ष में एक बार ही चाबी देनी पड़ती है। फिर भी घड़ी नियत समय तक चलती रहती है। अगर कोई घड़ी चाबी देते समय चले और चाबी देना बन्द करते ही बन्द हो जाय तो यही कहा जाएगा कि यह घड़ी खोटी हो गई है। इसी तरह जितनी देर परमात्मा का भजन किया जाय, उतनी ही देर वह स्मरण में रहे और फिर याद न रहे—जीवनव्यवहार के समय विस्मृत हो जाय तो वह परमात्मा का सच्चा भजन नहीं कहा जा सकता। घड़ी में चाबी भरने के समान, एक बार परमात्मा को नमन करके जो पुरुष सदैव परमात्मा को स्मरण रखता है, वह कभी पापकर्म नहीं कर सकता। ऐसा ईश्वरभक्त कभी परस्त्री और परधन की तरफ़ बुरी दृष्टि भी नहीं डाल सकता।

गंगा कहती है—'अगर तू परमात्मा को नमन करता रहे और उसे भूले नही तो समझ लेना कि मेरी-तेरी जुदाई नहीं है—मैं तेरे समीप ही हूँ। तू जो भी कुछ करे, ईश्वर को स्मरण करके ही करना। ऐसा करने से किसी भी कार्य के विषय में तुझे अहंकार नहीं होगा। और अहंकार त्याग कर नम्र बनना आवश्यक है। अपने चित्त में किसी भी

और किसी भी कारण से अभिमान का उदय मत होने देना। ईश्वर को वही प्रिय है जो नम्र है। तुझे भी वही वृक्ष अच्छा लगता है जो फलयुक्त होकर नम्र हो जाता है। इस-लिए नम्रता धारण करना।'

नम्र होने का अर्थ यह नहीं कि अपने में हीनता आने दी जाय। पूज्य श्रीलालजी महाराज अकसर कहा करते थे कि मनुष्य को न तो पानी जैसा ही होना चाहिए और न पत्थर जैसा होना चाहिए। मनुष्य को बीकानेरी मिश्री जैसा होना चाहिए। बीकानेरी मिश्री अगर फेंक कर मारी जाय तो चोट पहुँचाती है, और अगर मुँह में डाली जाय तो मिठास देती है। इसी प्रकार मनुष्य को सद्गुणों के प्रति नम्र और दुर्गुणों के प्रति कठोर होना चाहिए।

आप यह न सोचें कि गंगा की यह शिक्षा साधुओं के लिए ही है, गृहस्थ इसका पालन नहीं कर सकते। ऐसा समझना भयानक भूल है। गंगकुमार साधु नहीं हो रहा था। वह राज्य के संचालन के लिए जा रहा था। राज्य-संचालन के लिए यह शिक्षा दी गई है। जैसे अन्न और प्रकाश सभी के लिए हितकारी होता है, उसी प्रकार यह शिक्षा भी सब के लिए हितकारी है। इस शिक्षा को जो जितने अंशों में ग्रहण करेगा वह उतने ही अंशों में लाभ उठा सकेगा। जैसे शुद्ध हवा और पानी का मूल्य न होने के कारण वह अनमोल हैं—उनका मूल्य हो ही नहीं सकता, इसी तरह यह शिक्षा भी अनमोल है।

लेकिन जैसे लोग शुद्ध हवा और पानी का महत्त्व भूल रहे हैं वैसे ही आप इस उपदेश के महत्त्व को न भूलें। इसे हृदय में स्थान दें और अपना कल्याण करें।

गंगा कहती है—'पुत्र! राज्य दीन जनों को चूसने के लिए नहीं है। सबल से निर्बल की रक्षा करना ही राज्य-व्यवस्था का उद्देश्य है। इसी उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए राजा की आवश्यकता है। अब तक तूने इस वन में रहकर पशुओं और पक्षियों की रक्षा की है, मगर अब तेरे कंधों पर भारी बोझा आ रहा है। अब तुझे सबल से निर्बलों की रक्षा करनी होगी। संसार के समस्त झगड़ों की जड़ क्या है? असली जड़ का पता लगाया जाय तो प्रतीत होगा कि सबलों द्वारा निर्बलों का सताया जाना ही सब झगड़ों का मूल है। तू सताये जाने वाले निर्बलों का समर्थ सहायक बनना, यही मेरा उपदेश है और यही मेरा आशीर्वाद है।'

गंगा फिर कहती है—'हे पुत्र! तू दीन जनों पर अनुकम्पा करना। अनेक दीन तेरी अनुकम्पा की प्रतीक्षा करते हैं। ऐसे समय मे तुझे मै अपनी गोदी में कैसे छिपाए रख सकती हूँ? सूर्य अपने मंडल में ही छिपा रहे तो उसकी कद्र कैसे हो सकती है? अपने मंडल के बाहर निकलने से ही उसकी कद्र है। इसी में उसकी सार्थकता है। तेरी शक्ति की सार्थकता भी इसी में है कि तू दीन-हीन जनो की अनुकम्पा करने के समय घर मे ही घुसकर न बैठा रहे। उनकी रक्षा करने के लिए

वाहर निकल पड़े। समय आने पर सभी को वाहर निकलना पड़ता है और जो वाहर नहीं निकलता उसे संसार में कोई नहीं पूछता। और हे पुत्र! तू सदा सत्य का ही पक्ष लेना। असत्य से दूर रहना।'

वहुत-से लोग अकसर असत्य का पक्ष ले वैठते हैं। जरा-सी कठिनाई आई कि सत्य को धता वता देते हैं और असत्य को अंगीकार कर लेते हैं। ऐसे लोगों को मार्ग वतलाने के लिए शास्त्र में अरणक (अर्हन्नक) श्रावक का चरित वतलाया गया है। अरणक श्रावक का जहाज डूव रहा था। जहाज के सभी मुसाफिर कह रहे थे कि जहाज डूव जाने से सभी लोग डूव मरेंगे। सव को वचाना है तो सत्य को छोड़ दो। लेकिन अरणक ने कहा—सत्य पर दृढ़ रहने वाले का जहाज नहीं डूवा करता। जहाज उसका डूवता है जो सत्य से भ्रष्ट हो जाता है। और वह सत्य पर अटल रहा। अरणक सोच सकता था कि सभी लोग सत्य को त्यागने का आग्रह कर रहे हैं। सत्य को त्यागने से इस समय मेरी वदनामी नहीं होगी, वरन् यह सव मुसाफिर मेरी प्रशंसा करेंगे। फिर भी उसने ऐसा नहीं सोचा और अन्त तक वह दृढ़ रहा। जैसे अरणक दूसरों के आग्रह करने पर भी सत्य से विचलित नहीं हुआ-सत्य से चिपटा रहा, उसी प्रकार आप भी सत्य को मज़बूत पकड़ कर वैठे रहें। सत्य की अवहेलना न [illegible]ें। सत्य की अवहेलना करना अपनी आत्मा के सच्चे विवेक

की अवहेलना करना है।

गङ्गा कहती है—'पुत्र ! तुझे दूसरे का कल्याण प्रिय है। इसलिए मै तुझे छोड़ रही हूँ। तू मेरा उद्देश्य पूर्ण करना। पुत्र के समान प्रजा का पालन करना। सत्पुरुषों का सत्कार करना। दुर्जनों से दूर रहना। दुर्जनों का सत्कार-पुरस्कार करना सज्जनता का नाश करना है।'

गुलिश्तां में कहा है—सज्जनों के साथ अन्याय करके दुर्जनों का पक्ष लेने वाला सज्जनों का नाश करता है। वास्तव में यह बात सत्य है। अनेक प्रमाणों द्वारा इसकी सत्यता सिद्ध की जा सकती है। विभीषण रावण का भाई होकर भी राम के पास क्यों गया था ? इसलिए कि उसे भाई की अपेक्षा सज्जनता अधिक प्रिय थी। वह रावण को पिता के समान मानता था। उसने रावण को शक्ति-भर समझाया भी था। फिर भी जब रावण नहीं माना तो सज्जनता की रक्षा के लिए वह राम के पास चला गया।

गङ्गा ने गङ्गकुमार से कहा था—'मैं इस समय सूत्र रूप में जो शिक्षा तुझे दे रही हूँ, उसे याद रखना।' गङ्गा की शिक्षा के प्रताप से ही भीष्म न्यायप्रिय हुए। यद्यपि वह अन्यायी कौरवों के साथ रहे फिर भी पाण्डवों के प्रति उनके हृदय में स्नेह का भाव था। समय-समय पर वह दुर्योधन को समझाया भी करते थे। इस प्रकार शरीर से कौरवों के साथ होते हुए भी वे हृदय से सज्जनों का सत्कार करते थे। उन्होंने

सदा पाण्डवों का हित ही चाहा था।

आज तो लोग यह समझते हैं कि चाहे सो हो, मगर पुत्र के हाथ पीले हो जाएँ अर्थात् पुत्र का विवाह हो जाय। घर में वहू आ जाय तो मानों कृतकृत्य हुए। इस प्रकार संतान को विवाहित देख कर लोग फूले नही समाते। मानों मनुष्यजीवन का सार विवाह कर लेना और संतान उत्पन्न करना ही है! यह कितनी हीन मनोदशा है! लेकिन गङ्गा अपने पुत्र को अखंड ब्रह्मचर्य पालने की शिक्षा देती है। वह कहती है-पुत्र, अगर तू ब्रह्मचर्य का पालन करेगा तो सारे संसार का कल्याण कर सकेगा और मेरी कूंख को धन्य बनाएगा।

आज कौन मानने को तैयार है कि ब्रह्मचर्य पालने के लिए संतान को शिक्षा देना उचित है? लेकिन गंगा उसे उचित मानती थी और इसी कारण उसने गंगकुमार को ब्रह्मचर्य पालने की शिक्षा दी है। भीष्म को जैन और जैनेतर सभी ब्रह्मचारी स्वीकार करते हैं। अतएव गंगा के उपदेश को ध्यान में रखो और यह भावना रखो कि हमारी संतान अगर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन कर सके तो अच्छा ही है, अन्यथा कम से कम देशतः शीलव्रती तो उसे बनाएँ ही। इस प्रकार भावना रखकर संतान को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने से और उसके चारों ओर का वातावरण उसी प्रकार का बनाने से उसका भी कल्याण होगा, आपका भी कल्याण

होगा और जगत् का भी कल्याण होगा।

दूसरी माताएँ तो काम के समय अपने पुत्र को छिपाने लगती हैं, लेकिन गंगा अपने पुत्र को कार्य का भार उठाने की प्रेरणा करती है। वह समझती है कि रत्न की कीमत समुद्र या खजाने में पड़े रहने पर नहीं हो सकती। जौहरी के हाथ में पहुचने पर ही रत्न की कीमत होती है। इसी प्रकार गंगकुमार की कीमत यहाँ बने रहने से नहीं होगी, किन्तु पिता की सेवा करने से और अपने धर्म का पालन करने से होगी।

जब बालकों का सुधार और विगाड़ बहुत अंशों में माता-पिता के ही हाथ में है और प्रत्येक माता-पिता अपने बालक को सुधारना चाहता है-कोई विगाड़ना नहीं चाहता तो फिर क्यों इस ओर उपेक्षा की जाती है? माता-पिता द्वारा प्रारंभ में डाले गए संस्कारों को देव भी विगाड़ने में समर्थ नहीं हो सकता। अतएव गंगा के द्वारा दी हुई शिक्षा की तरफ ध्यान देकर वालक को सुसंस्कारी, सदाचारी, धर्मपरायण और कर्त्तव्यशील बनाना ही उचित है। गंगा फिर कहती है:—

निष्काम वृत्ति को धार करो तुम राज-काज व्यवहार,
निर्विकार चित में मत आने देना कभी विकार।
स्फटिक मणि सम निर्मल रहना जिससे होवे सुधार,
सब मिल······ ·· भीष्म की॥

विनय सहित कर श्रवण वचन वह बोला गंगकुमार,
भाग्यशाली मैं हुआ आज जो पाया शिक्षा सार।
तव आज्ञा अनुसार रहूँगा नहीं लोपूंगा कार,
सब मिल · ········ ············भीष्म की ॥
विधिवत् वंदन करके मात को चलन हुए तैयार,
आशीर्वाद तब दिया मात ने धर्म बढ़ा सुखकार।
हर्ष शोक अश्रु की दृष्टि से देखे राय असवार,
सब मिल··························भीष्म की ॥
पुत्र पति को समझा करके भेजे राय के ताय ?
किसी तरह से मन बहलाते आये शहर के माय।
स्वतन्त्र वन में रहे गंगाजी सुखमय समय बिताय,
सब मिल····· ···················भीष्म की ॥

गंगा कहती है—'पुत्र! जिनका हृदय निर्बल होता है, उन्हें सत्ता का नशा बहुत जल्दी चढ़ जाता है। सत्ता पाकर और उसके नशे में बेभान होकर सत्ता का दुरुपयोग करने वाले लोग बहुत हैं। सदुपयोग करने वाले विरले ही दृष्टिगोचर होते हैं। अगर महाराज कभी तुझे राज्य सत्ता सौंपें तो तू उसका दुरुपयोग मत करना। निष्काम भाव से राज्यका संचालन करना।'

कहा जा सकता है कि निष्काम भाव से राज्य का संचालन किस प्रकार किया जा सकता है? राजा को साम, दाम, दंड और भेद की नीति से काम लेना पड़ता है। ऐसी स्थिति में निष्काम भावना कैसे रह सकती है?

इस प्रश्न का समाधान शास्त्र में बहुत विचार के साथ किया गया है। इसके लिए भरत चक्रवर्ती का उदाहरण भी दिया गया है। चक्रवर्ती भरत ने भगवान् ऋषभदेव से पूछा—'प्रभो! मै कितने भवों के बाद मोक्ष प्राप्त कर सकूँगा?' भगवान् ने उत्तर दिया—'भरत! तू इसी भव में मोक्ष प्राप्त करेगा।

इस प्रश्नोत्तर के समय वहाँ एक और पुरुष बैठा था। उसने मन में सोचा—भरत महाराज चक्रवर्त्ती हैं। इनके आरंभ-समारंभ का ठिकाना नहीं! फिर भी भगवान् ने इन्हें इसी भव में मुक्त हो जाना बतलाया है। तो मुझे तो इनसे भी पहले मुक्ति मिल जानी चाहिए। इस तरह सोचकर उसने भी भगवान् से यही प्रश्न किया। भगवान् वीतराग और त्रिकालदर्शी थे। उन्होंने कहा—अभी तेरे संसार का अन्त नहीं है—अर्थात् तेरा मोक्ष समीप नही है।

भगवान् का उत्तर सुनकर वह सोचने लगा—भगवान् भी पक्षपात करते जान पड़ते हैं। भरत छह खंड के राजा हैं, फिर भी इसी भव में मोक्ष प्राप्त कर लेंगे और मेरे भव-भ्रमण का अभी अन्त ही नहीं है! उसे विश्वास हो गया कि भगवान् ने पक्षपात करके यह उत्तर दिया है। भरतजी उसके मन की बात ताड़ गये। उन्होंने कोई युक्ति करके उसका भ्रम दूर करने का विचार किया।

भरत ने उसे अपने पास बुलाया। उससे कहा—'तुम्हारे

मन में यह भ्रम घुसा हुआ है कि भगवान् ने मोक्ष बतलाने में मेरे साथ पक्षपात किया है।'

आज का ज़माना होता तो वह भरत के प्रभाव का और भगवान् के प्रभाव का खयाल करके गलत उत्तर दे देता या उत्तर ही न देता। मगर उस समय के लोग बहुत सरल स्वभाव थे। अतएव उसने कहा—'हाँ महाराज, आपका खयाल ठीक है।'

भरत ने कहा—ऐसा भ्रम होना अस्वाभाविक बात नहीं है। तेरे और मेरे आरंभ में बिन्दु और सिन्धु के बराबर अन्तर है। फिर भी भगवान् ने मुझे इसी भव में मुक्त होना बतलाया है और तुम्हारा संसार अपरिमित कहा है। भगवान् के इस कथन पर बहिर्दृष्टि वालों को संदेह हो सकता है। यद्यपि भगवान् पूर्ण वीतराग और सर्वज्ञ हैं, उनके वचन पर संदेह नहीं होना चाहिए, लेकिन सब पुरुषों की चित्तवृत्ति एक-सी नहीं होती। बल्कि भगवान् के वचन पर अश्रद्धा होना ही इस बात की सूचना है कि अश्रद्धा करने वाले का मोक्ष निकट नहीं है। खैर, तुम्हें एक काम करना होगा।

उस पुरुष ने कहा—भला आपका काम क्यों नहीं करूँगा?

भरत बोले—मैं तेल से भरा एक कटोरा तुम्हें देता हूँ। तुम्हें इस कटोरे को लिये-लिये विनीता नगरी में घूम आओ; मगर तेल की एक भी बूँद इसमें से न गिरने पावे। एक भी बूँद गिरा तो यह सिपाही तुम्हारे साथ जा रहे हैं, बूँद

गिरते ही तुम्हारा सिर गिरा देंगे।

इस प्रकार कह कर भरत ने उस आदमी के साथ कुछ सिपाही कर दिये। सिपाहियों से एकान्त मे कह दिया गया कि इसे भय भले ही दिखाना, मगर मार मत डालना। उस दिन भरत ने विनीता नगरी खूब सजवाई थी। आदमी तेल से भरा कटोरा हथेली पर रखकर चला। वह सोचता था कि यह तेल क्या है, मेरे प्राण है। एक भी बूंद टपका नही कि मेरे प्राणों पर आ बनेगी। इस भय के कारण वह बड़ी सावधानी से, कटोरे पर दृष्टि गड़ाये, धीमे-धीमे चल रहा था। कटोरे के तेल में सजी हुई विनीता नगरी का प्रतिबिम्ब पड़ता जाता था। वह प्रतिबिम्ब को देखता जाता था और सोचता जाता था कि यह नगरी का प्रतिबिम्ब है। अगर मैं नगरी की सजावट देखने लगा और तेल गिर पड़ा तो मार डाला जाऊँगा। कोई प्रतिबिम्ब अच्छा भी आता था और कोई बुरा भी। कोई सामान्य आता था और कोई विशेष भी। लेकिन उस ओर उसका कोई लक्ष्य नहीं था। उसकी दृष्टि का एक मात्र केन्द्र कटोरे में का तेल था। वह सोचता था—इस प्रतिबिम्ब के भुलावे में पड़ना अनर्थ-कारी होगा।

वह आदमी जैसे-जैसे चलता जाता था, प्रतिबिम्ब भी पलटते जा रहे थे। परन्तु उसने उस ओर लक्ष्य नहीं दिया। जैसे-तैसे भरा कटोरा भरत के सामने लाकर रख

भरत के सामने कटोरा रख देने के बाद उसकी जान में जान आई। वह सोचने लगा—चलो, जान बची लाखों पाये!

भरत—कहो, नगरी में घूम आये?

आदमी—जी हाँ।

भरत—तेल में से बूँद तो नहीं गिरने दिया?

आदमी—इसमें मेरे प्राण थे। कैसे गिरने देता महाराज!

भरत—आज विनीता नगरी बहुत सुसज्जित है। देखा, कैसी सजावट हुई है?

आदमी—तेल में प्रतिबिम्ब पड़ते थे और वह एक के बाद दूसरे बदलते भी जा रहे थे। मगर मेरा सारा ध्यान तो तेल की ओर था। मै प्रतिबिम्बों को देखकर तेल को कैसे भूल सकता था?

भरत—तुमने पुरस्कार के योग्य काम किया है। लेकिन जो बात बतलाने के लिए मैंने तुम्हें कटोरा लेकर भेजा था, वह समझे या नहीं?

आदमी—मै कुछ नहीं समझा। कृपा करके आप ही बतलाइए।

भरत—मै तुम्हें यह समझाना चाहता था। विनीता नगरी आज अपूर्व शोभा धारण किये है। तुमने नगरी में चक्कर लगाया, फिर भी नगरी के सौन्दर्य से कोई सरोकार नहीं रक्खा। तुम्हारा मन इस कटोरे में ही लगा रहा।

यही स्थिति मेरी है। मै राज्य-सम्पदा के बीच में रहता हूँ, मगर मेरा मन उसमें लिप्त नहीं होता। मेरा मन एकान्त धर्म में ही लीन रहता है। तुमने कटोरे में पड़ने वाले प्रतिबिम्बों के विषय में यह माना था कि यह तो आते-जाते ही रहते हैं। इसी तरह मै भी संसार की सुख-सामग्री को पुण्य का प्रतिबिम्ब मानता हूँ और यह भी मानता हूँ कि यह तो आते-जाते ही रहते है। इसमें क्या धरा है! इस विचार के कारण संसार की सर्वोत्तम सुख-सामग्री के बीच में रह कर भी मेरा मन उसमें कभी लिप्त नहीं होता। इसी कारण भगवान् ने मुझे इसी भव में मोक्ष प्राप्त होना कहा है। दूसरी ओर तुम हो। तुम प्रकट में तो कम आरभ-समारंभ करते हो किन्तु संसार के प्रपंचों में डूबे रहते हो। इसी कारण प्रभु ने तुम्हारा मोक्ष निकट न होना बतलाया है।

भरत की यह कथा बड़े काम की है। आप भी सोच सकते हैं कि संसार के पदार्थ आते-जाते ही रहते हैं। मिलना और बिछुड़ना पुद्गलों का स्वभाव है। फिर मै इनमें क्यों फँसूँ? इस प्रकार विचार करने से हृदय के विकार दूर हो जाते हैं। चित्त की वृत्ति शांत और पवित्र बनती है।

कहने का आशय यह है कि भरत छह खण्ड के अधिपति होने पर भी और राज्य की व्यवस्था करते हुए भी किस प्रकार निष्काम रहते थे! भरत की यह कथा निष्काम कर्म करने का आदर्श उपस्थित करती है।

गंगा कहती है—हे पुत्र ! तू भी भरत की तरह निष्काम-भाव से राज्य करना। मन में किसी प्रकार का विकार मत आने देना।

गंगा का उपदेश आत्मा को पवित्र बनाने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। जो इस पर ध्यान देगा और अमल में लाएगा, उसका कल्याण हुए बिना नहीं रह सकता।

आखिर द्रवित हृदय से गंगकुमार ने गंगा को प्रणाम किया और पिता के साथ रवाना हो गया।



१०

शान्तनु और सत्यवती की भेंट

—::::()::::—

गंगकुमार हस्तिनापुर में आ गया। महाराज शान्तनु अपने इकलौते पुत्र को पाकर मानों निहाल हो गए। गंगकुमार भी कोई साधारण पुत्र नहीं था। उसकी असाधारण विनम्रता, कुशलता आदि गुण देखकर शान्तनु के आनन्द की सीमा न रही। प्रजा को भी सुयोग्य उत्तराधिकारी पाकर अपार हर्ष हुआ। लेकिन गंगकुमार के हृदय की थाह ली जाय तो विदित हुए बिना नहीं रह सकता कि उसके हृदय के भीतरी भाग में कोई बड़ा असंतोष, कोई अभाव, घर किये बैठा है। वह बोलता-चालता है, राज-काज में योग देता है, राजमहल में सभी प्रकार की सुख-सामग्री उसके मनोरंजन के लिए प्रस्तुत है, किसी वस्तु की कमी नहीं है, फिर भी उसमें कभी आन्तरिक आह्लाद नज़र नहीं आता। वह गंभीर बना रहता है। यंत्र की तरह अपने कर्त्तव्य में जुटा रहता है। उसके जीवन में एक प्रकार की नीरसता व्यापी रहती है। कभी किसी

ने उसे खिलखिला कर हँसते नहीं देखा। मित्रमंडली में वह बैठता है लेकिन वहाँ भी एक अपरिलक्षित विषाद जैसे उसे घेरे रहता है। जान पड़ता है उसका शरीर हस्तिनापुर में है और हृदय वन में है। शरीर उसने अपने पिता की सेवा में समर्पित कर दिया है और हृदय माता के चरणों में है।

महाराज शान्तनु गंगकुमार की यह अवस्था देखते हैं और उदास हो जाते हैं। गंगकुमार को अत्यन्त स्नेह के साथ बुलाते हैं, बिठलाते हैं, उससे बातें करते हैं, समझाते हैं और उसके आन्तरिक विषाद को दूर करने के सभी संभव उपाय करते हैं। गंगकुमार पिता के प्रति विनम्र व्यवहार करता है। लेकिन जो विषाद उसके जीवन में एक-रस हो गया है, उसे वह दूर नहीं कर सकता। यह देख शान्तनु कभी-कभी विकल हो उठते हैं। गंगकुमार की उदासीनता के लिए अपने आपको अपराधी भी समझते हैं और गंगा का स्मरण करके छटपटाने लगते हैं। मगर गंगा की कभी प्रत्यक्ष रूप से चर्चा नहीं करते। शायद इसलिए कि इससे गंगकुमार को अधिक कष्ट होगा!

कभी-कभी गंगकुमार सोचने लगता है'—माता! अलौकिक त्याग और बलिदान की साक्षात् मूर्ति! धर्म के लिए तूने पति का त्याग किया है! पुत्र के कल्याण का विचार करके तूने पुत्र को भी त्याग दिया है। किस साधना के लिए तू वन-वास कर रही है!' यह सोचते-सोचते उसका हृदय

विह्वल हो जाता है। गंगकुमार एक क्षण के लिए भी अपनी माता की मूर्ति को आँखों से ओझल नहीं होने देता !

सट्टेबाज़ सौ-सौ शपथ खाकर भी अपनी शपथ को भङ्ग कर ही डालता है। उसे सट्टा किये बिना चैन नहीं पड़ता। शराबी शराब न पीने का आज निश्चय करता है और शाम होते-होते उसका निश्चय हवा में उड़ जाता है। सट्टा भी दुर्व्यसन है, मदिरापान भी दुर्व्यसन है। इसी तरह शिकार करना भी दुर्व्यसन है। शिकारी की भी वही हालत होती है जो शराबी और सट्टेबाज़ की। शान्तनु प्रतापी राजा होकर भी अपने कुव्यसन का गुलाम है। वह बड़े भूमिभाग पर शासन करता है पर अपने हृदयप्रदेश पर उसका अधिकार नहीं है। कभी-कभी सोचता है—जिस दुर्व्यसन के कारण मुझे गंगा जैसी सती और धर्मपरायण रानी से हाथ धोना पड़ा, उसके अधीन होना कितनी नीचता है ! लेकिन जब उसकी चाण्डाल-चौकड़ी जमा होती है और वह शिकार की गुणावली का गान करती है तो शान्तनु व्यतीत को भूल जाता है और शिकार के लिए लालायित हो उठता है।

एक दिन की बात है। राजा शान्तनु घोड़े पर बैठा हुआ अपने साथियों के साथ, यमुना के किनारे-किनारे चला जा रहा था। अचानक उसे सुगंध का अनुभव हुआ। राजा सोचने लगा—यह असाधारण गंध किस वस्तु की होगी ? मैंने तरह-तरह के इत्र काम में लिये हैं, भाँति-भाँति के फूल

सूंघे हैं, मगर इस प्रकार की गंध तो कभी किसी में नहीं देखी। यह कैसी मोहक सुगंध है ?

राजा शान्तनु उस सुगंध पर मुग्ध होकर आगे बढ़ा। कुछ आगे जाने पर उसने देखा—एक कन्या नाव पर खड़ी, नाव चला रही है। उसके रूप-यौवन को देखकर राजा दंग रह गया। वह यमुना के किनारे टकटकी लगाकर कन्या की ओर देखने लगा। वह सोचने लगा-यह रत्न यहाँ कैसे आया ?

राजा को टकटकी लगाए अपनी ओर देखते देख कन्या को भी विस्मय हुआ। वह सोचने लगी—यह पुरुष वेष-भूषा से राजा जान पड़ता है। राजा होकर भी यह इस प्रकार मेरी ओर निहार रहा है। कन्या इस आश्चर्य में डूबी है और राजा इस आश्चर्य में डूबा है कि इतनी असाधारण रूप-राशि की स्वामिनी यह कन्या नाव कैसे चला रही है ?

राजा और कन्या अपने-अपने मन में इस प्रकार के विचार करने लगे। कन्या जब समीप आई तब राजा शान्तनु उससे कहने लगा—सुभगे ! क्या मै तुम्हारा परिचय पा सकता हूँ ? मेरे सामने बोलने में तुम्हें संकोच न हो तो तुम्हें अपना परिचय देने की याचना करता हूँ।

राजा के इस भाँति सन्मानपूर्ण शब्द सुनकर कन्या, जिसका नाम सत्यवती था, आश्चर्य करने लगी। उसने किंचित् लज्जायुक्त होकर कहा—महाराज ! मेरा परिचय ही । है ? मै सौदास कोली की कन्या हूँ। मेरा नाम सत्यवती

है। मैं अपने पिता का काम-नाव चलाना-भी करती हूँ।

राजा—ऐसी सुन्दरी और सुकुमारी होकर भी यह काम कैसे करती हो ?

सत्यवती—महाराज, जिस कुल में जन्म लिया है उसके कार्य से घृणा करना निरा अहंकार है। मैं कोली के कुल में जनमी हूँ। नाव चलाना इस कुल का परम्परा का कर्त्तव्य है। अगर मैंने नाव चलाना न सीखा होता तो मैं पिता को कष्ट देने वाली ही साबित होती।

राजा—तुम्हारा विचार उदार और उत्तम है सुन्दरी, मगर नाव चलाने का कठिन कार्य तो पुरुषों के योग्य है। गृहकार्य करना ही कन्याओं के लिए काफी है। तुम इस कठोर कार्य के योग्य नही हो।

सत्यवती—मैं किस काम के योग्य हूँ और किस काम के लिए अयोग्य हूँ, यह निर्णय करना मेरे पिताजी के हाथ में है। मैं स्वयं इसका निर्णय नहीं कर सकती। मैं तो—

आज्ञा गुरूणामविचारणीया।

अर्थात्—गुरुजनों की आज्ञा आँख मूंद कर माननी चाहिए, इस सिद्धान्त का पालन करती हूँ।

राजा—सुन्दरी, जैसा तुम्हारा बाह्य रूप श्रेष्ठ है वैसे ही आन्तरिक रूप भी। यद्यपि तुम्हारा उत्तर निरुत्तर बनाने वाला है, फिर भी कहे बिना नहीं रहा जाता कि तुम्हारा पिता लोभी जान पड़ता है। इसी कारण उसने तुम जैसी सुकुमारी को

नाव चलाने के कठिन और संकटमय कार्य में लगा रक्खा है।

राजा का यह आक्षेप सुनकर सत्यवती की त्यौरियाँ चढ़ गई। लेकिन वह तत्काल सँभल कर कहने लगी—आप जो कुछ कहना चाहें, मुझको ही कह लें। पिताजी के विषय में कुछ न कहें। आपने विना जाने-पहचाने ही मेरे पिताजी को लोभी कह दिया! आप उन्हें कैसे लोभी कह सकते हैं? जिसने यह आज्ञा दे रक्खी है कि जो पैसा न दे सकता हो फिर भी पार उतरना चाहता हो उसे धर्मार्थ पार उतार देना; वह क्या लोभी हो सकता है? अपने पिता की इस आज्ञा की प्रतीति मै आपको करा सकती हूँ। आप पार चलना चाहते हों तो चलिए। कुछ लिए विना ही मै आपको परले पार पहुँचा दूँगी।

शान्तनु राजा है। फिर भी उसे सत्यवती की बात सुनकर दंग रह जाना पड़ा। वह सोचने लगा—यह कन्या धन्य है, जिसमें माता-पिता के प्रति अगाध श्रद्धा है। वह निर्भीक है और उदार भी है। विना कुछ लिए मुझे पार उतारने को तैयार है मुझे राजा समझ कर भी कुछ माँगती नहीं, वरन् मेरा उपकार करने को उद्यत है।

राजा ने कहा—जिसमें विना पैसा लिए नाव द्वारा पार उतार देने की उदार भावना है, वह घर में बैठकर ही क्या ईश्वर का भजन नहीं कर सकता? उसे नाव चलाने के संकट में पड़ने की क्या आवश्यकता है?

सत्यवती—(हँसकर) राजन्, आपका प्रश्न विकट है, फिर भी मैं इसका उत्तर देती हूँ। मै नदी में यह नाव चलाती हूँ, उसी प्रकार आप राष्ट्र की नाव चला रहे हैं। मैं जनता को सुभीता कर देती हूँ और आप भी प्रजा को कष्ट से मुक्त करते हैं। क्या आपको घर में बैठकर भगवान् का भजन करना नहीं आता? फिर आप मुझ से यह प्रश्न क्यों करते हैं? आलस्य में पड़े रहकर धर्म का भरोसा करना धर्म का अपमान करना है। जब आप धर्म का अपमान नहीं करना चाहते तो मुझे ऐसा करने के लिए क्यों कहते हैं?

सत्यवती के इस कथन ने राजा को निरुत्तर कर दिया। वह कुछ भी न बोल सका। उसने मन में कहा—हे सुभगे, तू मुझे नाव से नदी के पार पहुँचाना चाहती है पर मैं तेरी सहायता से संसार की कठिनाइयों को पार करना चाहता हूँ। अपने जीवन के इस व्याकुल प्रवाह में स्थिरता पाने के लिए मैं तेरा आश्रय लेना चाहता हूँ।

इतने वार्त्तालाप से राजा सत्यवती के शील-स्वभाव को परख सका। वह पहले उसकी शारीरिक सुन्दरता पर मुग्ध हुआ था। अब उसे जान पड़ा कि यह कन्या अकेले रूप की ही धनी नहीं वरन उत्तम स्वभाव और गुणों की भी धनी है। यह देखकर कन्या के प्रति उसका आकर्षण और बढ़ गया।

राजा शक्तिशाली था। सत्ता उसके हाथ में थी। सत्यवती वहां अकेली थी। उसका कोई रक्षक नहीं था। राजा उसके

रूप-लावण्य पर मुग्ध भी हो चुका था। वह चाहता तो कन्या को उठा कर ले जा सकता था। लेकिन राजा न मालूम किस धर्म से वँधा हुआ था? उसने सोचा—इस कन्या से कुछ कहना अन्याय है। मैं धर्म की रीति से, इसके पिता से विधिवत् याचना करूँ— और फिर इसके साथ विवाह करूँगा।



११

भीष्म-प्रतिज्ञा

———:::():::———

राजा शान्तनु नदी के तट से चल दिया। उसने सत्यवती के पिता का नाम-ठाम पूछ लिया था। वह सत्यवती के पिता शिवदास के पास पहुँचा। शान्तनु राजा है और दूसरों को दान देता है, फिर भी आज वह याचक बनकर शिवदास के द्वार पर जा खड़ा हुआ है।

गरीब शिवदास स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था कि किसी दिन शान्तनु जैसा प्रतापी नरेश उसकी झोंपड़ी के द्वार पर याचक बन कर आ सकता है! अतएव राजा को आते देख वह दहल गया! उसने सोचा—आज मेरे द्वार पर राजा क्यों आ रहा है? मुझसे कौन-सा भयंकर अपराध हुआ है? वह व्याकुल, सशंक और काँपता हुआ, हाथ जोड़े राजा के समक्ष उपस्थित हुआ। बोला—'महाराजा की जय हो! कहिए, क्या आज्ञा है इस दास को?'

राजा ने शिवदास की व्याकुलता समझ ली। उसे

आश्वासन देते हुए कहा—घबराओ मत शिवदास। तुमने कोई अपराध नहीं किया है। मैं याचक बनकर तुम्हें दाता बनाने आया हूँ।

शिवदास का भय दूर हो गया, लेकिन वह आश्चर्य में डूब गया। वह कहने लगा—'पृथ्वीनाथ! मेरे पास ऐसी क्या वस्तु है, जिसकी याचना आप कर सकते हैं? अगर कोई ऐसी वस्तु होती भी तो आपका हुक्म ही काफी था। मैं हुक्म पाते ही सेवा में हाजिर हो जाता।

शान्तनु—शिवदास, वह वस्तु आज्ञा देकर मँगवाने की नहीं है, किन्तु याचक बनकर माँगने की है।

राजा, जब नदी-तट से रवाना हुआ तभी उसका प्रधान भी साथ हो लिया था। उसे राजा ने अपनी इच्छा से परिचित कर दिया था। इस समय भी वह राजा के साथ था। उसने कहा—तुम्हारी कन्या सत्यवती का भाग्य उदय हुआ है शिवदास! महाराज ने उस कन्या को देखा है। उसी की याचना करने के लिए महाराज यहाँ पधारे हैं। अब विलंब मत करो। जल्दी 'हाँ' कर दो। ऐसा पात्र तुम्हें दूसरा नहीं मिलने का!

शिवदास—निस्संदेह मैं भाग्यशाली हूँ, मगर यह कैसे भूल सकता हूँ कि मैं गरीब कोली हूँ और महाराज प्रख्यात प्रतापी नरेश हैं। मैं महाराज को जामाता बनाने की हैसियत में नहीं हूँ। कन्या को बड़े ठिकाने भेज देने पर तो उसका देखना भी मेरे लिए कठिन हो जायगा। इसलिए

महाराज और प्रधानजी मुझे क्षमा प्रदान करें। मेरी धृष्टता बड़ी है, मगर आपकी उदारता और क्षमाशीलता उससे भी बड़ी है।

वास्तव में शिवदास का यह कहना मात्र था। उसके हृदय में कुछ और बात थी। शिवदास के कहने का ढंग ही ऐसा था कि उसके बहाने को समझ लेना कोई बड़ी बात नहीं थी। राजा समझ गया। उसने प्रधान से कहा—प्रधानजी, शिवदास का यह कथन बहाना है। जो रानी होगी, उसे अपने पिता से मिलने को कौन मना कर सकता है? कुरुवंश ऐसा नहीं कि अपने दाता या श्वसुर को भूल जाय, भले ही जामाता जम या दुराचारी माना जाता है परन्तु कुरुवंशी ऐसे नहीं होते। इसलिए शिवदास से कहो कि असली बात कह दे। वृथा बहाना बनाने से क्या लाभ है?

शिवदास ने विचार किया—राजा मेरे बहाने को समझ गये हैं और वह असली बात जानना चाहते हैं। असली बात को छिपाने से लाभ ही क्या होगा! आखिर तो वह कहनी ही होगी। यह सोचकर उसने कहा—महाराज! वास्तविक बात यह है कि आपके गंगापुत्र पुत्र मौजूद हैं। वह ऐसे प्रतापी हैं कि सारा संसार उनकी धाक मान रहा है। वही राज्य के उत्तराधिकारी हैं। प्रथम तो आपके बड़े पुत्र होने के कारण ही वह राज्य के उत्तराधिकारी हैं, दूसरे प्रताप-शाली होने के कारण भी। ऐसी स्थिति में मेरी कन्या का

पुत्र राज्य का अधिकारी नहीं हो सकेगा और पुत्र के राज्याधिकारी न होने के कारण मेरी लड़की सदा दुखित रहेगी। आपके यहाँ जब ऐसे प्रतापी पुत्र मौजूद हैं तो आपको दूसरा विवाह करने की आवश्यकता भी क्या है? मैं इसी कारण आप सरीखे सुयोग्यपात्र का सत्कार करने में असमर्थता अनुभव कर रहा हूँ।

राजा ने सोचा था—गरीब शिवदास कुछ शुल्क लेना चाहता है। अब उसकी बात सुनी तो चक्कर में पड़ गया। अगर मैं सत्यवती के पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की प्रतिज्ञा करता हूँ तो गंगकुमार का हक मारा जाता है। ऐसा नहीं करता तो सत्यवती हाथ से जाती है। शिवदास अपनी कन्या के उज्ज्वल भविष्य की यदि कामना रखता है तो उसे अनुचित भी कैसे कहा जा सकता है? यद्यपि सत्यवती ने मेरा मन हरण कर लिया है और वह मेरी नाव पार लगाने वाली भी है, फिर भी गंगकुमार के न्यायसंगत अधिकार का अपहरण नहीं किया जा सकता। जब शिवदास कोली होते हुए भी अपनी सन्तान के हिताहित का इतना अधिक विचार रखता है तो मैं कुरुवंशी राजा—न्यायाधीश होकर भी क्या अपनी संतान के हित का विचार त्याग दूँ? क्या मैं अपने सुख के लिए गंगकुमार जैसे सुयोग्य, विनीत और समर्थ पुत्र को उसके अधिकार से वंचित कर दूँ? नहीं, ऐसा नहीं होगा।

राजा अनमने भाव से हस्तिनापुर की ओर लौट चला। शिवदास अपनी झोंपड़ी में जा बैठा। शिवदास के मन में तनिक भी पश्चात्ताप नहीं है। उसका ख़याल है कि उसने जो कुछ कहा है, वह एकान्त उचित और न्यायसंगत है।

राजा अपने महल में आकर भी अत्यन्त खिन्न है। वह एक दरिद्र कोली के घर से निराश होकर लौटा है। राजा होकर भी वह भिखारी बना लेकिन कितने परिताप की बात है कि उसे भिक्षा न मिली! वह पश्चात्ताप की आग में जल रहा था। उसे राज्य वैभव, राजमहल, खान-पान और अपना शरीर भी दुखदायी प्रतीत होने लगा। जब मनुष्य प्रबल आकांक्षा करके किसी वस्तु की याचना करता है और पाता नहीं है तब उसका दुःख "मरणादतिरिच्यते" अर्थात् मृत्युकष्ट से भी बढ़ जाता है। राजा के विषाद की कोई सीमा नहीं थी। आवेश में आकर वह अपने आपको धिक्कारने लगा। कहने लगा—हे इन्द्रियो! क्या तुमने मुझे नहीं छला? हे नाक, तू ऊँची होने गई थी या नीची होने गई थी? अगर तूने योजनगंधा—सत्यवती—की गंध ग्रहण न की होती और ग्रहण करके भी उस पर लुब्ध न हुई होती तो क्या इस प्रकार अपमानित होना पड़ता? गंध को खोजने के लिए तूने ही इन आँखों को उत्सुक बनाया था! अरे नेत्रो! तुम कैसे निर्लज्ज हो कि उसके रूप पर जाकर अटक गए? हृदय! तूने मुझे कितना मार डाला है? वास्तव में तू ही मेरा वैरी है। तेरे

द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता या न ऐसा है। तेरा वर्णन तो दूर रहा, एक स्त्री के चरित्र का वर्णन भी कठिन है। तूने मुझे ही नहीं छला बल्कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव से भी मृगाक्षी स्त्रियों के लिए पानी भरवाया है। तेरा चरित्र वाचा कहने में असमर्थ है।

ब्रह्मपुराण, शिवपुराण और विष्णुपुराण से प्रकट है कि ब्रह्मा को सावित्री के लिए अपना सिर कटवाना पड़ा, शंकर को पार्वती के लिए नाचना और भागना पड़ा और विष्णु को तो गोपिकाओं ने नचाया ही था। यह चरित्र विकारी है। हम जिनका वर्णन किया करते हैं वे निर्विकार चरित्र वाले ब्रह्मा आदि दूसरे ही हैं। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री अकलंकदेव कहते हैं—

> त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितम्,
> साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं साङ्गुलम्।
> रागद्वेषभयामयान्तकजरालोलत्वलोभादयो,
> नालं यत्पदलंघनाय स महादेवो मया वन्द्यते॥

भी नमस्कार किया है। भर्तृहरि ने अपने पद्य में जहाँ काम की निन्दा की है वहीं उसकी प्रबल शक्ति का दिग्दर्शन भी कराया है, क्योंकि वे स्वयं भी उससे धोखा खा चुके थे।

शान्तनु हृदय की व्यथा को हल्का करने के लिए अपनी इन्द्रियों की निन्दा करने लगा, लेकिन उसका मन काबू में नहीं आया। शान्तनु उसे शान्त करने का ज्यों-ज्यों प्रयत्न करता था, मन त्यों-त्यों उचटकर सत्यवती के पास जा पहुँचता था। कभी सत्यवती की सरलता, कभी सुन्दरता, कभी बुद्धि की चतुरता और कभी उसकी वाक्पटुता का वह विचार करने लगता था।

इस प्रकार राजा का चित्त घोर अशांति का अनुभव करने लगा। नाना प्रकार के संकल्प विकल्प उसके चित्त में समुद्र में लहरों की भाँति उत्पन्न होते और विलीन होते थे। उसके मन में कभी गंगकुमार का विचार आता और कभी सत्यवती का चित्र खिंच जाता। वह सोचने लगता-दोनों में से किसको अपनाऊँ? कभी उसके मन में आता कि दरिद्र शिवदास की इतनी मज़ाल! उसे मेरा अपमान करने का साहस हुआ! संसार जानता है कि रत्नों का स्वामी राजा होता है। सत्यवती रमणीरत्न है और उसका असली स्वामी मैं हूँ। क्यों न मैं उसे पकड़वा मँगाऊँ?

इसके बाद ही विचार परिवर्त्तित हो जाता। वह सोचने लगता-क्या एक रमणी के खातिर पूर्वजों-द्वारा रक्षित धर्म

को ठुकरा देना उचित होगा ? कौरववंश के नर-रत्न जिस मर्यादा का प्राणपण से पालन करते आये हैं, क्या तुच्छ स्वार्थ में फँसकर उस पवित्र मर्यादा को भंग करना मेरे लिए उचित होगा ? नहीं, शान्तनु कौरव-कुल को कलंकित नहीं कर सकता। कौरवकुल की कीर्ति में धब्बा लगाना शांतनु सहन नहीं कर सकता।

इस प्रकार के संकल्प-विकल्प करते-करते दिन पर दिन बीतते गये। राजा की उलझन बढ़ती गई। मन पर वह विजय न पा सका। गंगकुमार और सत्यवती में से वह किसी का मोह न त्याग सका। सतत चिन्ता के कारण राजा पीला पड़ गया। बुढ़ापा न होने पर भी उसके चेहरे पर बुढ़ापे के लक्षण दिखाई देने लगे। वह इसी सोच-विचार में रहता कि यदि वह अनिंद्य सुन्दरी और गुणवती तरुणी महल में आकर न बसी तो मेरा जीवन ही निष्फल हो गया। लेकिन अपने सुख के लिए विनीत, नीतिमान, दक्ष, और पितृभक्त पुत्र गंगकुमार के अधिकार का अपहरण कैसे किया जा सकता है ? निषदास का प्रस्ताव गंगकुमार के सामने रखा जाय तो वह उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेगा और राज्याधिकार त्याग देगा, लेकिन ऐसा करना क्या पिता का कर्त्तव्य है !

कभी-कभी राजा सोचने लगता—'यद्यपि निषदास का शरीर काला और बेडौल है, परन्तु जब मेरे सामने खड़ा

हुआ और मैंने उसके हृदय की पहिचान की, तब वह ऐसा सुन्दर प्रतीत हुआ जैसे उसके समान सुन्दर और कोई है ही नहीं ! पहले मैं सोचता था कि ऐसे कोली के यहाँ ऐसी सुन्दरी का जन्म कैसे हुआ ? परन्तु देखता हूँ कि उसका हृदय जितना स्वच्छ है उतना किसी राजा-महाराजा का भी शायद ही हो। मैं उसकी कन्या की याचना करके उसका जामाता बनना चाहता था। उसे अपना श्वसुर बनाना चाहता था। राजा का श्वसुर बन जाने पर उसे किस चीज़ की कमी रह सकती थी ? उसका भाग्य खुल जाता। मगर उसने ऐसा विचार नहीं किया। उसने नहीं सोचा कि नाव चलाने की किल्लत हमेशा के लिए मिट जाएगी और पालकी बैठने को मिलेगी। उसे ऐसा लोभ नहीं हुआ। यह लोभ किसे नहीं हो सकता था ? मगर शिवदास ने आती हुई लक्ष्मी को इसी प्रकार ठुकरा दिया जैसे वन का तपस्वी राज्य को ठुकरा देता है।

मित्रो ! सत्यवती वास्तव में शिवदास की नहीं दूसरे की कन्या है। शिवदास यह बात भलीभाँति जानता है। बहुत-से लोग लोभ के फेर में पड़कर अपनी ही कन्या की भलाई का विचार नहीं करते तो पराई कन्या का कब भला सोचेंगे ? मगर एक यह शिवदास है जो अपनी भलाई की परवाह न करके कन्या की भलाई ही सोचता है। वह सोचता है कि सत्यवती राजकन्या है, फिर भी इसका पुत्र

मगर राजा न हुआ तो सत्यवती दुखी होगी। कन्या को कष्ट पहुँचाने वाला कार्य मैं कदापि नहीं करूँगा।

शिवदास का चरित उन लोगों की आँखें खोल देने के लिए काफी है जो स्वार्थ के वश होकर अपनी ही कन्या को बेच देते हैं। और यह नहीं देखते कि वर वृद्ध या रोगी है या मृत्यु के नज़दीक पहुँच रहा है।

राजा शान्तनु की अवस्था बड़ी विचित्र है। वह तीन तरह के विचारों में पड़ा व्याकुल हो रहा है। एक ओर सत्यवती का आकर्षण है, दूसरी ओर राजकुमार का न्यायसंगत अधिकार है। कभी-कभी वह सत्यवती को पकड़ मंगवाने का भी विचार करता है, मगर दूसरे ही क्षण उसे अपने धर्म का स्मरण हो आता है।

आज तो समर्थ को दोषी ही नहीं माना जाता। कहा जाता है—

समरथ को नहिं दोष गुसाईं।

बड़ों के बड़प्पन के सौ गुनाह माफ समझे जाते हैं। परन्तु मैं कहता हूँ कि संसार में अधिक दोष बड़े कहलाने वालों ने ही फैलाये हैं। जनता बड़ों को आदर्श मानकर उनका अनुकरण करती है, और फिर बड़ों के दोष छोटों में भी घुस जाते हैं। कहावत भी है—

महाजनो येन गतः स पन्थाः।

इस कहावत के अनुसार साधारण जनता बड़ों के दोषों

हुआ और मैंने उसके हृदय की पहिचान की, तब वह ऐसा सुन्दर प्रतीत हुआ जैसे उसके समान सुन्दर और कोई है ही नहीं! पहले मैं सोचता था कि ऐसे कोली के यहाँ ऐसी सुन्दरी का जन्म कैसे हुआ? परन्तु देखता हूँ कि उसका हृदय जितना स्वच्छ है उतना किसी राजा-महाराजा का भी शायद ही हो। मैं उसकी कन्या की याचना करके उसका जामाता बनना चाहता था। उसे अपना श्वसुर बनाना चाहता था। राजा का श्वसुर बन जाने पर उसे किस चीज़ की कमी रह सकती थी? उसका भाग्य खुल जाता। मगर उसने ऐसा विचार नहीं किया। उसने नहीं सोचा कि नाव चलाने की किल्लत हमेशा के लिए मिट जाएगी और पालकी बैठने को मिलेगी। उसे ऐसा लोभ नहीं हुआ। यह लोभ किसे नहीं हो सकता था? मगर शिवदास ने आती हुई लक्ष्मी को इसी प्रकार ठुकरा दिया जैसे वन का तपस्वी राज्य को ठुकरा देता है।'

मित्रो! सत्यवती वास्तव में शिवदास की नहीं दूसरे की कन्या है। शिवदास यह बात भलीभाँति जानता है। बहुत-से लोग लोभ के फेर में पड़कर अपनी ही कन्या की भलाई का विचार नहीं करते तो पराई कन्या का कब भला सोचेंगे? मगर एक यह शिवदास है जो अपनी भलाई की परवाह न करके कन्या की भलाई ही सोचता है। वह सोचता है कि सत्यवती राजकन्या है, फिर भी इसका पुत्र

अगर राजा न हुआ तो सत्यवती दुखी होगी। कन्या को कष्ट पहुँचाने वाला कार्य मैं कदापि नहीं करूँगा।

शिवदास का चरित उन लोगों की आँखें खोल देने के लिए काफी है जो स्वार्थ के वश होकर अपनी ही कन्या को बेच देते हैं! और यह नहीं देखते कि वर बूढ़ा या रोगी है या मृत्यु के नज़दीक पहुँच रहा है।

राजा शान्तनु की अवस्था बड़ी विचित्र है। वह तीन तरह के विचारों में पड़ा व्याकुल हो रहा है। एक ओर सत्यवती का आकर्षण है, दूसरी ओर गंगकुमार का न्यायसंगत अधिकार है। कभी-कभी वह सत्यवती को पकड़ मँगवाने का भी विचार करता है, मगर दूसरे ही क्षण उसे अपने धर्म का स्मरण हो आता है।

आज तो समर्थ को दोषी ही नहीं माना जाता। कहा जाता है—

समरथ को नहिं दोष गुसाईं।

बड़ों के बड़प्पन को सौ गुनाह माफ़ समझे जाते हैं। परन्तु मैं कहता हूँ कि संसार में अधिक दोष बड़े कहलाने वालों ने ही फैलाये हैं। जनता बड़ों को आदर्श मानकर उनका अनुकरण करती है और फिर बड़ों के दोष छोटों में भी घुस जाते हैं। कहावत भी है—

महाजनो येन गतः स पन्था।

इस कहावत के अनुसार साधारण जनता बड़ों के दोषों

को भी आदर्श मान कर अपना लेती है और संसार में पाप फैल जाता है।

शान्तनु दुहरी दुविधा में पड़ा हुआ दुबला होता जा रहा है। भले ही और मार्ग उसके अधिकार में नहीं थे, लेकिन एक ऐसा मार्ग अवश्य था, जिस पर चलने से वह सारी दुविधाओं से बच सकता था। अगर शान्तनु अपनी काम-वासना को जीत लेता और ब्रह्मचर्य धारण कर लेता तो उसे बड़ी शांति मिलती। वह सोच सकता था कि गंगा स्त्री होकर भी जब ब्रह्मचर्य का पालन कर रही है और उसने प्राप्त भोगोपभोगों को भी ठुकरा दिया है, तो मैं भी ब्रह्मचर्य क्यों न पालूँ? इस विचार को अमल में लाने से उसकी व्याकुलता मिट जाती और उसे जीवन में अपूर्व शांति प्राप्त होती। जैसे गंगकुमार महापुरुष, उत्तम पुरुष और वृद्ध-पुरुष माने जाते हैं, उसी प्रकार शान्तनु भी माना जाता। मगर वह ऐसा न कर सका। वह अपनी काम-वासना को जीतने में असफल रहा। फिर भी वह इस अंश में प्रशंसनीय है कि सत्यवती को बहुत अधिक चाहने पर भी एवं उसके विरह में घोर मानसिक वेदना सहन करके भी उसने मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। लोग चाह के वश में होकर ही मर्यादा तोड़ डालते हैं, जैसे पाटन के प्रभु सिद्धराज ने जसमा के लिए मर्यादा भङ्ग कर दी थी।* वैसे राजा शान्तनु ने मर्यादा भङ्ग नहीं की। गीता में कहा है—

*जसमा की कथा के लिए देखो—जवाहरकिरणावली, चौथी किरण।

१२

भीष्म की प्रतिज्ञा

——::::()::::——

एक दिन गंगकुमार जब पिता की चरण-वन्दना के लिए गये तो पिता की दुरवस्था देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और चिन्ता भी हुई। वह मन ही मन सोचने लगे—पिताजी के हृदय में क्या काँटा चुभा है, जिससे यह इस प्रकार विपण्ण और दुर्बल होते जाते हैं। जिस पुत्र के मौजूद रहते पिता को कष्ट हो उस पुत्र को धिक्कार है!

गंगकुमार ने राजा शांतनु से पूछा-पिताजी, यह मैं समझ सकता हूँ कि आपके कष्ट का कारण मैं ही हूँ। मेरे निमित्त से ही आपका शरीर सूखकर काँटा हो गया है। लेकिन आपकी यह दशा अब असह्य है। अतएव अगर मेरा भला चाहते हों तो कृपाकर स्पष्ट बतलाइए कि आपकी मनोव्यथा का कारण क्या है? किस कारण आपकी यह दशा हो गई है? अगर कारण बतलाने में संकोच न हो और वह कारण ... के लिए मैं अयोग्य न होऊँ तो मुझे बतलाइए। मैं

अर्थात्--काम की कामना करने वाला पुरुष सदैव दुखी रहता है, व्याकुल रहता है और अशांत बना रहता है।

राजा शांतनु काम को जीत तो न सका मगर कामान्ध होकर उसने मर्यादा का त्याग भी नहीं किया। आप भी अगर पूरी तरह ब्रह्मचर्य नहीं पाल सकते तो कम से कम गृहस्थ-धर्म की मर्यादा की तो रक्षा करो। जिस स्त्री का पाणिग्रहण किया है, जिसके साथ अग्नि, मंत्र, देव, देवी आदि की साक्षी से विवाह किया है, और पत्नीव्रती रहने की प्रतिज्ञा की है, उसे धोखा मत दो। कम से कम परस्त्रीगमन का त्याग अवश्य करो। अतीत में जो कुछ हुआ सो हुआ, अब आगे के लिए सँभलोगे तो परम कल्याण होगा।

शांतनु ने राज्य का समस्त भार गंगकुमार के कंधों पर डाल दिया था। वह उस ओर से सर्वथा निश्चिन्त था। गंग-कुमार के शासन से प्रजा भी सन्तुष्ट और सुखी थी। गंग-कुमार को कोई सत्यवादी, कोई धर्मात्मा और कोई पुण्यशाली कहता था। और यह कथन गंगकुमार की चापलूसी करने के लिए उसके सामने नहीं वरन् परोक्ष में भी किया जाता था। प्रजा वास्तव में ऐसा ही अनुभव करती थी। गंगकुमार का उदार व्यवहार और धर्मनिष्ठ जीवन ही ऐसा था कि उसकी प्रशंसा हुए बिना नहीं रह सकती थी। गंगकुमार ने अपने प्रेम से शत्रुओं का हृदय भी जीत लिया था। उसकी कीर्ति दिन-दिन बढ़ती जाती थी और अन्य राजा लोग कीर्ति सुन-कर प्रमोद प्रकट करते थे। गंगकुमार के प्रति किसी को ईर्षा या द्वेष नहीं था।

१२

भीष्म की प्रतिज्ञा

——::::():::——

एक दिन गंगकुमार जब पिता की चरण-वन्दना के लिए गये तो पिता की दुरवस्था देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और चिन्ता भी हुई। वह मन ही मन सोचने लगे—पिताजी के हृदय में क्या काँटा चुभा है, जिससे यह इस प्रकार विषण्ण और दुर्बल होते जाते हैं। जिस पुत्र के मौजूद रहते पिता को कष्ट हो उस पुत्र को धिक्कार है!

गंगकुमार ने राजा शांतनु से पूछा-पिताजी, यह मैं समझ सकता हूँ कि आपके कष्ट का कारण मैं ही हूँ। मेरे निमित्त से ही आपका शरीर सूखकर काँटा हो गया है। लेकिन आपकी यह दशा अब असह्य है। अतएव अगर मेरा भला चाहते हों तो कृपाकर स्पष्ट बतलाइए कि आपकी मनोव्यथा का कारण क्या है? किस कारण आपकी यह दशा हो गई है? अगर कारण बतलाने में संकोच न हो और वह कारण जानने के लिए मैं अयोग्य न होऊँ तो मुझे बतलाइए। ग

अपने प्राण देकर भी आपको सुखी रखने की चेष्टा करूँगा।

गंगकुमार की भावनामय विनम्र प्रार्थना सुनकर शांतनु का हृदय गद्‌गद हो गया। वह मन में कहने लगा—क्या ऐसे सुशील बालक का अधिकार दूसरे को लुटाया जा सकता है? अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इसका भविष्य अंधकारमय कैसे बनाया जा सकता है? एक विचित्र दुविधा की स्थिति में शान्तनु की आँखों से आँसू निकल पड़े। बोली न निकली।

पिता की यह स्थिति देख गंगकुमार ने कहा—पिताजी, मैंने आपसे जो कारण पूछा है सो इसलिए नहीं कि आपका दुख और बढ़ाऊँ।

शांतनु ने गंगकुमार को गले से लगा लिया और प्रेम से सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—पुत्र, चिन्ता करने योग्य कोई बात नहीं है।

गंगकुमार—आप सरीखे महापुरुष अकारण ही इतने दुखी और दुर्बल नहीं हो सकते। अतएव अगर आप मुझे इस योग्य समझते हों तो कोई पर्दा न रखिए और कृपा कर अपनी चिन्ता का कारण बतलाइए। हाँ, अगर अपकी चिन्ता का निवारण करना मानवीय शक्ति से पर हो तो मै इतना ही कहूँगा कि ऐसी बात के लिए चिन्ता करना ही व्यर्थ है।

शान्तनु—बेटा, मुझे तेरी ही चिन्ता है। तू मेरा एक ही पुत्र है। तुझे कौरव वंश का सूर्य कहूँ या चन्द्र कहूँ, कुछ है तू ही है। तुझे भी युद्ध करने के लिए शत्रुओं के

बीच जाना पड़ता है। मै सोचता हूँ, कौन जाने कब क्या घटना घट जाए ! मै तेरा कल्याण चाहता हूं।

पिता की बात सुनकर गंगकुमार ने मुस्किरा कर कहा—पिताजी, मुझ पर आपका असीम स्नेह है, इसीलिए आप अपनी चिन्ता का असली कारण बतलाकर मुझे दुखी नहीं करना चाहते। आपका पुत्र ऐसा नही है, जिसके लिए आप को चिन्तित होना पड़े। यह बात आप स्वय जानते भी हैं। चिन्ता का कारण कुछ और ही है, जिसे आप प्रकट नहीं करते। कृपा कर मुझे वास्तविक कारण से परिचित कीजिए।

शान्तनु सोचने लगे—समझा था कि ऐसा कहने से गंगकुमार प्रसन्न और संतुष्ट हो जायगा। मगर न वह प्रसन्न हुआ, न संतुष्ट ही।

यह सोचकर शांतनु बोले—वत्स, मेरी एक चिन्ता यह भी है कि तुम्हारी माता ने तो अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया मगर मै न कर सका। तुम्हारी माता प्रतिज्ञा का पालन करके भी तप कर रही है और मै प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होकर भी राजमहल के सुख भोग रहा हूँ।

इतना कहकर शान्तनु ने पिछला सम्पूर्ण वृत्तान्त गंग-कुमार से कह सुनाया। किस प्रकार वह शिकार के लिए वन में गया, किस प्रकार गंगा से भेंट हुई, किस प्रकार प्रतिज्ञा की और तोड़ी और आखिर गंगा उसे छोड़ कर चल दी, इत्यादि समस्त घटनाएं शान्तनु ने गगकुमार के सामने उपस्थित

कर दी।

तत्पश्चात् खेदखिन्न होकर वह कहने लगा—मुझे बार-बार यही विचार आता है कि आज तुम्हारी माता यहाँ होती तो तुम अकेले क्यों होते? तुम सरीखा तुम्हारा और भाई होता। उस अवस्था में मुझे काहे की चिन्ता थी? एक पुत्र भी कोई पुत्र है! एक आँख भी कोई आँख है!

गंगकुमार पिछला सारा वृत्तांत सुन कर अत्यन्त गंभीर हो गया था। उसे अपनी माता का अपूर्व स्नेह याद आ गया। माता की दृढ़ता और धार्मिकता की कथा सुन कर उसकी छाती फूल उठी। वह गौरव अनुभव करने लगा। लेकिन तपोमय जीवन का स्मरण करके उसके हृदय में कैसी भावना उत्पन्न हुई, यह कहना कठिन है। उसे कुछ ऐसा हुआ, जिसे विषादमय संतोष कहा जा सकता है।

गंगकुमार बोला—पिताजी, चिन्ता की क्या बात है? माताजी तप कर रही हैं, यह तो प्रसन्नता की बात है। आपने अपनी ओर से उनका परित्याग नहीं किया है, यह सोच कर आप भी संतोष कर सकते हैं। माताजी की तपस्या की शक्ति से मैं, आप और यह कुल शक्तिशाली है। कदाचित् आपकी चिन्ता का यही कारण हो तो प्रश्न होता है कि इससे पहले आपको यह चिन्ता क्यों नहीं हुई थी? माताजी की स्मृति ने आपको इतना ज्यादा दुखी कर दिया है, इसका कोई तात्कालिक कारण तो होना ही चाहिए।

शान्तनु इससे आगे कुछ न कह सके। पेट की बात जीभ पर लाने में उन्हें घोर लज्जा प्रतीत होती थी। लज्जा और संकोच ने मिलकर उनका मुँह बन्द कर दिया।

शान्तनु की बात से गंगकुमार को कुछ-कुछ असली बात का आभास मिल गया था। उसने बिना कहे ही पिता का हृदय पहचान लिया था। वह समझ गया था कि पिता के हाड़ पिंजर निकल आने और आँखे बैठ जाने का कारण मैं ही हूँ।

गंगकुमार अपने जीवित पिता का श्राद्ध करने के लिए तत्पर हो गया। अन्य लोग तो मृत पिता का श्राद्ध करते हैं मगर गंगकुमार ने जीवित पिता का ही श्राद्ध करना निश्चित कर लिया। श्राद्ध का अर्थ है—'जो श्रद्धापूर्वक किया जाय।' 'श्रद्धया दीयते-इति श्राद्धः।' तात्पर्य यह है कि श्रद्धापूर्वक जो त्याग किया जाता है, किसी के बहकाने या फुसलाने में आकर नहीं, परम्परा का पालन करने के लिए भी नहीं, वरन् हृदय की श्रद्धा से जो त्याग किया जाता है, वह श्राद्ध है। गंगाकुमार ऐसा ही श्राद्ध करने के लिए तैयार हो गया।

गंगकुमार ने अपने मन्त्रियों को बुला कर कहा—आज मैं संकट में हूँ और संकट टालने के लिए ही आपको बुलाया है।

मन्त्री भौंचक से रह गए। वह कहने लगे—आप जैसे बलवान्, नीतिज्ञ और प्रजा के प्रिय राजकुमार पर क्या

संकट आ सकता है ?

गंगकुमार—अब मैं प्रशंसा के योग्य नहीं हूँ। जिस पुत्र के रहते पिता दुखी हों, वह पुत्र प्रशंसा का पात्र नहीं कहा जा सकता। मंत्रीगण, जब तक पिताजी सुखी न हों, मेरा जीवन वृथा है। आज मैंने पिताजी से उनके दुख का कारण पूछा था। उन्होंने कुछ कारण बतलाए भी हैं, मगर उनसे मेरा संतोष नहीं हुआ। अगर आप में से कोई उनके दुःख का वास्तविक कारण जानता हो तो बतलाइए।

गंगकुमार की चिन्तायुक्त बात सुनकर मंत्रीगण हँसकर कहने लगे—महाराज को किसी बड़ी बात का दुःख नहीं है। बात वास्तव में जरा-सी है। महाराज एक धीवर की कन्या पर मोहित हुए हैं और जब से मोहित हुए है तभी से चिंतित रहते हैं। चिन्ता का कारण यह है कि धीवर अपनी कन्या से उत्पन्न पुत्र को ही राज्याधिकारी बनाने की माँग कर रहा है और महाराज आपका अधिकार छीनना नहीं चाहते। यही चिंता का वास्तविक कारण है।

गंगकुमार—महाराज को जिस बात की चिन्ता है, वह आपकी दृष्टि में क्या छोटी है ?

प्रधान—छोटी नहीं तो और क्या बड़ी है ? एक धीवर की छोकरी के लिए इतनी चिन्ता करने की आवश्यकता क्या है ? राजा रत्नभोगी होते हैं। अतएव धीवर की लड़की के लिए किसी से पूछताछ करने की जरूरत नहीं। उसे पकड़

को बुलवा लेना चाहिए। महाराज को यह सम्मति दी गई थी। मगर उन्होंने हमारी बात नहीं मानी और चिन्ता ही चिन्ता में घुले जा रहे हैं। एक धीवर के कहने से किसी का राज्य किसी को नहीं दिया जा सकता और न ऐसी बातों से राज्य ही चलता है। सीधी तरह न मानने वालों की पूरी तरह खबर लेने से ही राज्य चल सकता है।

ऐसे समय गंगकुमार का क्या कर्त्तव्य था? अगर वह मस्तिष्क की सलाह मानता तो मस्तिष्क उसे वही सलाह देता जो मंत्रियों ने दी थी। मगर हृदय की बात दूसरी है। गंगकुमार हृदयेश्वर है। उसने प्रधानों से कहा—अब मैं समझ गया कि पिता जी राजा क्यों हुए और आप प्रधान ही क्यों रह गये? आपको प्रजा के कष्ट की पीड़ा नहीं है। पिताजी धन्य हैं जो अपनी चाह में नमक की डली की तरह घुलते रहे, पर जिन्होंने धर्म नहीं त्यागा। अर्थात् धीवर की कन्या को जबर्दस्ती नहीं लाये। वह धीवर भी सचमुच धी-वर (बुद्धिमान्) है, जिसने अपने स्वार्थ की परवाह न करके अपनी कन्या का ही हित सोचा। पिताजी के हृदय में पाप नहीं है। उनका हृदय अत्यन्त स्वच्छ और पवित्र है। इसी कारण वे मेरे अधिकार की भी रक्षा कर रहे हैं और यह भी विचार कर रहे हैं कि किसी की कन्या को बलात् छीनना न्यायसंगत नहीं है। कन्या को पिता की गोद से छीनना ईश्वर से छीनना है। वास्तव में पिताजी का विचार

वहुत पवित्र है। कोली निर्धन और निर्वल है तो क्या हुआ, वह अपने धर्म का पालन कर रहा है। धर्म पालने वाले को राज्यसत्ता के कारण दंड देना सत्ता का दुरुपयोग करना है। पिताजी राजधर्म का पालन करने के कारण ही उस कन्या को जवर्दस्ती नहीं ला रहे हैं और मेरे अधिकार का विचार करके ही कोली को विश्वास नहीं दे रहे हैं कि उसकी कन्या का पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा। पिताजी सोचते हैं—गंग का हक दूसरे को कैसे दिया जाय? इस प्रकार पिताजी के दुख का कारण मै ही हूँ। इस समय मेरे लिए 'इदं न मम' कहने का अवसर उपस्थित हुआ है। अतएव मंत्रीगण, पिताजी मेरे कारण ही दुखी हो रहे हैं, इसलिए मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि जव तक पिताजी का दुख दूर न हो जायगा तव तक मै अन्न ग्रहण न करूँगा। मै तपस्विनी माता गंगा का पुत्र हूँ। अपने पिता का कष्ट अवश्य ही दूर करूँगा, चाहे मुझे कितना ही त्याग क्यों न करना पड़े!

'अन्नं वै प्राणाः' इस कथन के अनुसार अन्न त्यागने का अर्थ है—प्राण त्याग देना। वल्कि कभी-कभी प्राण त्यागना सरल होता है मगर अन्न त्यागना कठिन हो जाता है। गंगकुमार ने अन्न त्यागने की प्रतिज्ञा की है। वह समझते हैं कि यह तन-धन तो जाने को ही है, फिर इससे 'यज्ञ' का लाभ क्यों न ले लिया जाए?

गंगकुमार ने कहा—मंत्रियो! चलो शिवदास के घर

चलें और उसे समझा-बुझाकर पिताजी का कष्ट मिटाएँ।

मंत्री-आप उसके घर जाएँ, इससे बेहतर क्या यह न होगा कि उसी को यहाँ बुलवा लिया जाय? आप सरीखा प्रतापी वीर उस कोली की झोंपड़ी पर जाए, यह कुछ शोभा नहीं देता।

आजकल के राजा होते तो मन्त्रियों की यह सलाह बहुत पसन्द करते। मगर गंगकुमार दूसरी ही प्रकृति के राजपुत्र थे। उनकी असाधारण प्रकृति ने ही उन्हें संसार के इतिहास में अमर बना दिया है। आज भी भारत उनका ऋणी है। गंगकुमार ने मंत्रियों का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया कहा-जिससे याचना करनी है, उसे अपने घर बुलाना उचित नहीं है। याचक को दातार के पास पहुँचना चाहिए।

गंगकुमार रथ में बैठकर धीवर के घर रवाना हुए। उन्होंने अपने मंत्रियों से कहा—आप शिवदास का घर जानते ही हैं, इसलिए आप भी साथ चलिए। आप लोगों की साक्षी से ही मैं यह करूँगा।

रथ में बैठकर सब शिवदास के घर आये। उसे चिन्ता थी कि मैंने राजा को कन्या देना अस्वीकार कर दिया था, इस कारण राजा नाराज़ हो गया होगा। पर उसे संतोष इस बात से था कि मैंने राजा को अनुचित उत्तर नहीं दिया है। मैंने न तो उद्दंडता की है, न अपमान किया है। वह इसी सोच-विचार में था कि उसे रथ आता दिखाई दिया। उसे यह कुछ भय तो हुआ, मगर उसने अपना विचार [illegible]

मालूम होता है कि अभी भी [illegible], पर मैं जानता भी नहीं [illegible]।

शिवदास के घर पहुँचकर गंगकुमार रथ से नीचे उतरे। शिवदास ने यथायोग्य अभिवादन किया और आसन देकर विराजमान होने की प्रार्थना की। जब गंगकुमार ने आसन ग्रहण कर लिया तो शिवदास ने कहा— कहिए राजकुमार, क्या आज्ञा है मेरे लिए?

गंगकुमार—मैं जिस कार्य के लिए आया हूँ, वह तुम्हें सुनाता हूँ। परन्तु उसे स्वीकार करने में तुम जो बाधा समझते हो, उसे निःसंकोच भाव से प्रकट करो। किसी प्रकार का भय मत करो। मैं तुम्हें डराने-धमकाने नहीं आया हूँ।

भय असत्य का प्रधान कारण है। जहाँ भय है वहाँ असत्य आ ही जाता है। सच्ची बात वही कह सकता है, जिस पर किसी प्रकार का दबाव न हो और जो निर्भय हो। सत्य तो सत्य और प्रेम से ही प्रकाश में आता है।

गंगकुमार ने शिवदास से कहा—पहले मैं अपने आने का कारण बतलाता हूँ। पिता तुम्हारे द्वार से अपमानित होकर लौटे। इस अपमान के कारण उन्होंने अपना शरीर ही सुखा डाला है मगर उनके दुःख का कारण मैं हूँ, तुम नहीं हो। मैं न जनमा होता तो न तो तुम्हें पिता को खाली लौटाने और न उन्हें ही वचन देने में संकोच होता। इस प्रकार वह दुःख

से बच सकते थे। मगर मेरे कारण सब बात बिगड़ गई है। इसलिए मैं स्वयं पिताजी का दुख मिटाने आया हूँ। मैं पिताजी की वांछित वस्तु लेने आया हूँ। वह तुम्हारे यहाँ है। मैं उसे लेकर ही लौटूँगा, खाली नहीं। मैं बलात्कार से वह वस्तु तुमसे छीनना नहीं चाहता। ऐसा करना होता तो मेरे आने की आवश्यकता ही न पड़ती। मैं तुम्हें संतुष्ट करके तुम्हारी चीज ले जाना चाहता हूँ। अगर मैं उसे न ले जा सका तो पिताजी के लिए मैंने अन्न त्याग दिया है और प्राण भी त्याग दूँगा। यह शरीर पिता का ही है। पिता के निमित्त इसे त्याग देना कोई बड़ा भारी त्याग नहीं है। इतना त्याग करके भी अगर पिता को सुखी बना सका तो मैं धन्य हो जाऊंगा। पिता के दिये शरीर से इतने दिन जी लिया है और सुख भोग लिये हैं, अब अगर उन्हीं को यह शरीर समर्पण कर दिया जाय तो क्या बड़ी विशेषता है? तुम मेरा आशय समझ गये होगे। अब जो कुछ कहना हो स्पष्ट कहो।

गंगकुमार की बात ध्यानपूर्वक सुनने के अनन्तर सौदास सोचने लगा—इन जैसे पितृभक्त वीर पुत्र को धन्य है। परन्तु जो ऐसा वीर है वह मेरी पुत्री के पुत्र को राज्य करने देगा? देखना चाहिए कि इनकी पितृभक्ति मौखिक है या इनमें पिता के लिए सचमुच ही त्याग करने की तत्परता है? यह सोचकर सौदास कहने लगा—आपकी पितृभक्ति और पिता के निमित्त त्यागवृत्ति सर्वथा सराहनीय है।

धारण की कि भले ही राजा अपना धर्म त्याग दें, पर मैं अपना धर्म नहीं त्याग सकता।

शिवदास के घर पहुँचकर गंगकुमार रथ से नीचे उतरे। शिवदास ने यथायोग्य अभिवादन किया और आसन देकर विराजमान होने की प्रार्थना की। जब गंगकुमार ने आसन ग्रहण कर लिया तो शिवदास ने कहा—कहिए राजकुमार, क्या आज्ञा है दास के लिए?

गंगकुमार—मै जिस कार्य के लिए आया हूँ, वह तुम्हें सुनाता हूँ। परन्तु उसे स्वीकार करने में तुम जो बाधा समझते हो, उसे निर्भयतापूर्वक स्पष्ट रूप से प्रकट करो। किसी प्रकार का भय मत करो। मै तुम्हें डराने-धमकाने नहीं आया हूँ।

भय असत्य का प्रधान कारण है। जहाँ भय है वहाँ असत्य आ ही जाता है। सच्ची बात वही कह सकता है, जिस पर किसी प्रकार का दबाव न हो और जो निर्भय हो। सत्य तो सत्य और प्रेम से ही प्रकाश में आता है।

गंगकुमार ने शिवदास से कहा—अब मै अपने आने का कारण बतलाता हूँ। पिता तुम्हारे द्वार से अपमानित होकर लौटे। इस अपमान के कारण उन्होंने अपना शरीर ही सुखा डाला है मगर उनके दुःख का कारण मै हूँ, तुम नहीं हो। मै न जनमा होता तो न तो तुम्हीं पिता को खाली लौटाते और न उन्हें ही वचन देने में संकोच होता। इस प्रकार वह दुःख

से बच सकते थे। मगर मेरे कारण सब बात बिगड़ गई है। इसलिए मैं स्वयं पिताजी का दुख मिटाने आया हूँ। मैं पिताजी की वांछित वस्तु लेने आया हूँ। वह तुम्हारे यहाँ है। मैं उसे लेकर ही लौटूँगा, खाली नहीं। मैं बलात्कार से वह वस्तु तुमसे छीनना नहीं चाहता। ऐसा करना होता तो मेरे आने की आवश्यकता ही न पड़ती। मैं तुम्हें संतुष्ट करके तुम्हारी चीज़ ले जाना चाहता हूँ। अगर मैं उसे न ले जा सका तो पिताजी के लिए मैंने अन्न त्याग दिया है और प्राण भी त्याग दूँगा। यह शरीर पिता का ही है। पिता के निमित्त इसे त्याग देना कोई बड़ा भारी त्याग नहीं है। इतना त्याग करके भी अगर पिता को सुखी बना सका तो मैं धन्य हो जाऊँगा। पिता के दिये शरीर से इतने दिन जी लिया है और सुख भोग लिये हैं, अब अगर उन्हीं को यह शरीर समर्पण कर दिया जाय तो क्या बड़ी विशेषता है? तुम मेरा आशय समझ गये होगे। अब जो कुछ कहना हो स्पष्ट कहो।

गंगकुमार की बात ध्यानपूर्वक सुनने के अनन्तर सौदास सोचने लगा—इन जैसे पितृभक्त वीर पुत्र को धन्य है। परन्तु जो ऐसा वीर है वह मेरी पुत्री के पुत्र को राज्य करने देगा? देखना चाहिए कि इनकी पितृभक्ति मौखिक है या इनमें पिता के लिए सचमुच ही त्याग करने की तत्परता है? यह सोचकर सौदास कहने लगा—आपकी पितृभक्ति और पिता के निमित्त त्यागवृत्ति सर्वथा सराहनीय है।

आपका दर्शन पाकर मै कृतार्थ हुआ। आपके पिता की इच्छित वस्तु देने में मेरी ओर से तनिक भी देर नहीं है। अगर देर है तो सिर्फ आपकी ओर से। आपके पिताजी को आपका जो खयाल है, वह अनुचित नहीं कहा जा सकता। उन्हें यह भी विचार हो सकता है कि कदाचित् वे दूसरे को राज्य देना स्वीकार भी कर लें तो गंगकुमार उसे लेने भी कैसे देंगे ? और आप सरीखे वीर योद्धा के सामने किसी की क्या चल सकती है ? ऐसी स्थिति में मेरी लड़की को दुःख के सिवाय और क्या हो सकता है ? इससे अच्छा यही है कि मै उसका विवाह किसी छोटे घर में ही कर दूँ। हाँ, अगर आप पिता का दुख दूर करना चाहते हैं तो एक उपाय है। आप प्रतिज्ञा करें कि—'मैं राज्य नहीं लूँगा और सत्यवती का पुत्र ही राजा होगा और मैं उसकी रक्षा करूँगा।' ऐसी प्रतिज्ञा आप कर सकें तो महाराज का दुख मिट सकता है।

शिवदास, गंगकुमार से अपने अधिकार का राज्य त्याग देने की प्रतिज्ञा करवाना चाहता है। क्या गंगकुमार को ऐसी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए ? अपना राज्य अपने सौतेले भाई को दे देना चाहिए ? गंगकुमार अब बालक नहीं है। वह हस्तिनापुर का युवराज है और सत्ता उसके हाथ में है। ऐसे समय पर राज्य को त्याग देना कोई सरल कार्य नहीं है। परन्तु धर्मशास्त्र में अगाध विचार भरे पड़े हैं।

गंगकुमार ने ध्यान से शिवदास की बात सुनी। वह अपनी

आत्मा को समझाने लगे—'रे आत्मा, इस भूतल पर असंख्य राजा, महाराजा और चक्रवर्त्ती हो गए। परन्तु उन्हें भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, जैसा पितृयज्ञ करने का सौभाग्य तुझे प्राप्त हुआ है। मै इस पितृयज्ञ में सारे संसार को आमंत्रण दूँगा। हे मन, तू 'इदं न मम' 'का पाठ पढ़ने के लिए तैयार हो जा। अगर गंगकुमार राजा न हुआ तो हानि क्या होगी ? संसार के असंख्य मनुष्य प्राणी क्या सभी राजा ही हुए हैं ? राजा हुए बिना कौन-सा काम रुकता है ? इस दुर्लभ मानव-जीवन का उद्देश्य राजपद को प्राप्त कर लेना नहीं है। ऐसा होता तो तेरे पूर्वज अनेक चक्रवर्त्तियों ने—जो इसी कुल में हुए हैं—क्यों राज्य त्यागा होता ? राज्य लेना बड़ी बात है या मिलते हुए राज्य को ठुकरा देना बड़ी बात है ? इसलिए हे मन, तू दृढ़ हो जा और ऐसा दृढ़ हो जा कि चाहे मेरु हिल जाय पर तू न हिले। की हुई प्रतिमा कभी झूठी न हो।'

कहते हैं कि महादेव ने विष का पान किया था। किस लिए ? वास्तव में दूसरे के कल्याण के लिए विष पीने वाला ही महादेव है। कहा जाता है कि गंगा महादेव के सिर पर गई और गंगकुमार गंगा के पुत्र हैं। महादेव वह जहर पी गए तो देखना चाहिए कि गङ्गा के कुमार कैसा जहर पीते हैं ! दूसरे के कल्याण के लिए पिया जाने वाला जहर पीने से पहले ही ज़हर जान पड़ता है और उसका पीना कठिन

भी होता है, परन्तु पीने के पश्चात् वह अमृत बन जाता है और पीने वाले को अमर बना देता है।

श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुव्हति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुव्हति २६॥ ४

श्रोत्र आदि इन्द्रियों को संयम की अग्नि में हवन करना महायज्ञ है। गंगकुमार आज ही महायज्ञ करने के लिए तैयार हुए हैं। जो आँखें राजवैभव देखकर ललचाती थीं, प्रसन्न होती थीं, गंगकुमार उन्हें पितृहित की अग्नि में होम देते हैं। उन्होंने अपने कानों से कह दिया—हे कानो, तुम पितृयज्ञ की अग्नि की सामग्री बन जाओ। अब यह सुनने की आशा मत करो कि गङ्गकुमार राजा है। तुम यह सुनने को तैयार हो जाओ कि सत्यवती का पुत्र राजा है और गङ्गकुमार सेवक है। हे नाक, तू राजा होने के लिए ऊँची मत रह, किन्तु पितृहित के यज्ञ में पावन बनने के लिए ऊँची रह। हे पाँव, तुम कर्त्तव्यपथ पर दौड़ कर यह कहो कि सत्यवती का पुत्र ही राजा है। अब तक तुम अपने राज्य की रक्षा के लिए दौड़ते रहे थे, पर अब भाई के राज्य की रक्षा के लिए तुम्हें दौड़ना पड़ेगा। ऐ हाथो, अब तक तुम दूसरों का अभिवादन लेने के लिए ऊपर उठ रहे हो, अब दूसरों का अभिवादन करने के लिए ऊपर उठना। अब तुम अभिवादन लेना छोड़-कर अभिवादन करना सीखो। और हे शरीर, तू सिंहासन र बैठकर चँवर दुलवाने की इच्छा मत रख। यह मत्त्हव

अपने भाई को समर्पित कर दे। हे मस्तक, तू मुकुट की आशा न रखना। तू अपने त्याग से ही ऊँचा रह सके तो रहना। भाई के राज्य की रक्षा के लिए अगर तुझे शरीर से अलग होना पड़े तो उसके लिए भी तैयार रहना।

गंगकुमार के शरीर और प्रत्येक अग ने जब साक्षी दी तो वह बोले—सौदास ! क्या तुझे मेरे कुल का भान नहीं है ? तू कौरव-कुल को नही जानता ? कौरव-कुल मे उत्पन्न हुए दो भाइयों को यह विचार कभी आता ही नहीं कि यह राज्य मेरा है या मेरे भाई का है ? इस बात को तू लोगो से यहाँ तक कि देवों और गन्धर्वों से भी पूछ सकता है। कुरुवंशी सौतेली माता को दूसरी नहीं समझते। वे उसे सगी माता ही मानते हैं। जिसे पिता ने पत्नी बनाया है, वही पुत्र के लिए माता है। तुझे इतना भेदभाव मालूम पड़ता है, इससे जान पड़ता है कि तुझ पर तेरे कुल का प्रभाव है। तूने दूसरे राजाओं की बातें सुनी होंगी, इसीलिए मुझे भी वैसा ही समझता है। तूने पिताजी को कोरा उत्तर दिया और वह चुपचाप लौट गए। फिर भी तुझे कौरव-वंश की महत्ता मालूम नहीं हुई ? उन्होंने किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला, मैं भी सद्भावपूर्वक याचना कर रहा हूँ। फिर भी तुझे विश्वास नहीं आता ? विश्वास नहीं आता तो ले. मे प्रतिज्ञा करता हूँ। मेरी प्रतिज्ञा वीर क्षत्रिय की प्रतिज्ञा है। वह कभी पलट नहीं सकती। चाहे शरीर से प्राण निकल जाएँ, चाहे सूर्य अंधकार

देने लगे, चाहे चन्द्रमा अग्नि बरसाने लगे, चाहे पृथ्वी आश्रय देना बंद कर दे, चाहे जल और अग्नि अपना-अपना स्वभाव बदल दें, लेकिन मेरा प्रण नहीं पलट सकता। मैं प्रण करके कहता हूँ कि मैं राज्य ग्रहण नहीं करूँगा।

शिवदास ! राज्य के त्याग को तुम कोई बड़ा त्याग समझते होओगे, लेकिन मेरे लिए यह त्याग बड़ा नहीं है। मैं इसे तुच्छ बात मानता हूँ। जैसे दाहिने हाथ में अंगूठी पहनना या बाएँ हाथ में पहनना बराबर है उसी प्रकार बड़े भाई या छोटे भाई का राज्य करना भी बराबर है।'

सौदास सोचने लगा—'गंगकुमार है तो वीर। कुरु-वंश ऐसा ही वीर है। परन्तु ऐसे वीर गंगकुमार के लड़के कौन जाने कितने वीर होंगे ! सतयुग जा रहा है और कलियुग आ रहा है। कदाचित् इनके लड़कों पर कलियुग की छाया पड़ गई तो क्या होगा ? हक़दार होते हुए भी इनके लड़के राज्य नहीं पाएँगे और मेरा दौहित्र राज्य करेगा तो उनकी आँखों में खटकेगा। इसलिए इस अवसर पर उसका भी उपाय कर लेना उचित है।'

यह विचार कर सौदास बोला—'कुमार ! आपकी प्रतिज्ञा पर मुझे पूरा भरोसा है, फिर भी आपके पिता के साथ मेरी लड़की का विवाह होना कठिन दिखाई देता है। एक और बड़ी बाधा है, जिसका निराकरण करने के लिए मै आपसे निवेदन भी नहीं कर सकता।'

ऐसी गुस्ताखी भरी बात सुनकर गंगकुमार को क्रोध आ जाना स्वाभाविक था। गंगकुमार सोच सकते थे कि इसके संतोष के लिए मैंने राज्य का त्याग कर दिया है, फिर भी यह टालमटूल करने की हिम्मत करता है? मगर गंगकुमार अगर क्रोध करते तो उनकी कथा ही कैसे कही जाती? साधारण मनुष्यों के लिए इतिहास में कोई स्थान नहीं है। इतिहास में असाधारण मनुष्य ही स्थान पाते हैं। अगर उनकी असाधारणता अनुकरणीय होती है—देश और जाति के लिए प्रेरणा प्रदान करने वाली होती है तब तो पढ़ने वाले लोग उन्हें मस्तक झुकाते है। और यदि उनकी असाधारणता हेय होती है तो लोग घृणा के साथ उन्हें याद करते हैं। गंगकुमार की कथा क्यों कही जाती है, यह बात एक उदाहरण से समझाई जाती है।

एक मकान में आग लगी। आग बुझाने के लिए बहुतेरे आदमी आये, यहाँ तक कि राजा भी आया और आग बुझाने का 'फायर ब्रिगेड' आदि सामान भी आया। वहीं खड़ा हुआ एक आदमी आग बुझाने वालों से कहता है—'मूर्खो! आग क्यों बुझाते हो? इस आग के प्रताप से ही तो यहाँ महाराज का पदार्पण हुआ है और दूसरे इतने लोग ... हैं।' ऐसा कहने वाले की बात गलत नहीं कही ... क्योंकि वास्तव में अग्नि लगने के कारण ही ... जमा हुए हैं। परन्तु इसी कारण आग न...

बुझाना उचित है ? सांसारिक संघर्ष में से ही राजनीति, लोकनीति और धर्मनीति का विकास हुआ है। परन्तु क्या उस संघर्ष को बनाए रखना उचित है ? संसार के कामशास्त्र आदि अन्यान्य शास्त्र इस संघर्ष को बढ़ाने वाले हैं, परन्तु धर्मशास्त्र उसे मिटाता है। हमें संसार में फैली हुई संघर्ष की ज्वालाओं को शांत करना है। अगर कोई कहता है कि इस आग को रहने दिया जाय तो हम उसकी बात नहीं मानते। हमें मोक्ष तत्त्व निकालना है, अतएव संघर्ष की आग बुझाना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है।

गंगकुमार क्रोध करके सौदास के कान पेठ सकते थे। उसे देश-निकाला दे सकते थे और सत्यवती को जबर्दस्ती ले जा सकते थे। गंगकुमार यह सब कर सकते थे किन्तु धर्म का रास्ता यह नहीं था। धर्म का रास्ता निराला होता है। अतएव उन्होंने शांत-भाव से पूछा—अब जो बाधा रह गई है, वह भी कह डालो। उसके निराकरण का मार्ग भी निकल आएगा।

सौदास बोला—आप अपना प्रण निभाएँगे, इसमें तो कोई संदेह नहीं है। मगर कदाचित् आपके पुत्र ने कह दिया कि मेरे पिता का प्रण पिता जानें। मै उस प्रण को पालने के लिए बाध्य नहीं हूँ। तो उस अवस्था में क्या होगा? मेरा दुहिता राज्य कैसे कर सकेगा ?

गंगकुमार—आखिर तुम चाहते क्या हो ?

सौदास—इस भय की जड़ ही कट जाय तो सत्यवती का विवाह महाराज के साथ होने में कोई बाधा न रहे।

गंगकुमार—आखिर वह जड़ कैसे काटना चाहते हो?

सौदास—आपके ब्रह्मचारी रहने से भय की जड़ नहीं रहेगी।

गंगकुमार कुछ क्षणों के लिए गंभीर हो गए, मानो अपनी अन्तरात्मा से परामर्श करते हो। राज्य त्यागने की अपेक्षा यह प्रतिज्ञा बड़ी कठोर थी। फिर भी समर्थ पुरुषों के लिए संसार में कुछ भी कठिन नहीं रह जाता। गंगकुमार ने शीघ्र ही अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। वह कहने लगे—मेरी माता मुझे लेकर जंगल में चली गई थीं। मैं प्रकृति से शिक्षा पा रहा था। उस समय मुझे एक चारण मुनि के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मुनि महाराज का तेज अपूर्व था। मैंने विचार किया कि यह तेज किस प्रकार प्राप्त हो सकता है? जब मुनि ने अपना ध्यान समाप्त किया तो मैंने प्रश्न किया—भगवन्! आपमें यह अद्भुत तेज कहाँ से आया है? मुनिराज ने धीमे और मधुर स्वर में कहा—'त्याग और व्रत से।' मैंने उनसे निवेदन किया—प्रभो, मैंने क्षत्रियोचित सब विद्याएं तो सीख ली हैं, मगर मुझे ऐसे तेज की अभिलाषा है। मेरी प्रार्थना पर उन्होंने उपदेश देते हुए कहा था—ब्रह्मचर्य दिव्य शक्ति और दिव्य तेज प्रदान करने वाली महान् रसायन है। जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य का

पालन कर सकता है, उसके लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। उनका उपदेश सुनकर मैं पूर्ण व्रत तो अंगीकार नहीं कर सका, परन्तु मैंने स्वीकार किया था कि मैं (१) निरपराध त्रस प्राणी की हिंसा नहीं करूँगा (२) जानबूझ कर मनुष्य, पशु या पृथ्वी के विषय में असत्य भाषण नहीं करूँगा (३) किसी का हक छीनकर मालिक बनने का कार्य (चोरी) नहीं करूँगा और (४) यदि पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन कर सका तो अच्छा ही है, अन्यथा इस समय तो यही प्रतिज्ञा करता हूँ कि परस्त्री को माता बहिन के समान समझूँगा। हे सौदास, जान पड़ता है कि उन मुनि की शक्ति आज तुझमें आ गई है। इसी कारण तू मुझे ब्रह्मचर्य पालने की प्रेरणा करता है।

हे सौदास, तेरे हृदय को पिता ने पहचाना था और तेरा हृदय वास्तव में उत्तम है। इसी कारण तू अपनी लड़की का अधिकार सुरक्षित कर रहा है। तू ने मुझ से जो कुछ माँगा, उस माँग को सुनकर मुझे प्रसन्नता ही हुई है। तू मुझ कमल को विकसित करने वाला सूर्य है। चारण मुनि ने जो बात उस समय कही थी और जिसे तब स्वीकार नहीं कर सका था, उसका लाभ आज तेरे निमित्त से हो रहा है। हे धीवरराज! विवाह करके मैं दो-चार पुत्रों का ही पिता हो सकता था, मगर विवाह न करने की प्रतिज्ञा कराकर तू मुझे संपूर्ण ...र का पिता बना रहा है। ले, मैं तेरे सामने प्रतिज्ञा

करता हूँ—

'हे देवो ! आकाश-मण्डल पर विचरण करने वालो ! सुनो। हे पृथ्वी, पानी, पावक और पवन ! तुम साक्षी हो। यद्यपि तुम्हारे नियम अटल हैं, तथापि चाहे वह बदल जाएं मगर मेरा प्रण नहीं बदलेगा। गङ्गा के पुत्र की प्रतिज्ञा जीवन पर्यन्त अटल रहेगी। मैं तुम सब के सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा।'

चारण मुनि के समक्ष ली हुई प्रतिज्ञा के साक्षी देवों ने जयनाद से आकाशमंडल गुँजा दिया। आकाश-वाणी हुई—धन्य हो ! गङ्गकुमार धन्य हो ! पृथ्वी तुम्हारी पाद-पांशु से पावन हुई। हे कुरुवंश के अवतंस ! तुम्हारी जय हो ! युग-युग में तुम्हारी कीर्ति अक्षय रहेगी ! संसार तुम्हारे यश का वर्णन करते अघाएगा नहीं। हे धर्म की साक्षात् प्रतिमा ! तुम्हारा आदर्श अक्षुण्ण रहे। प्रण-पालन की तुम्हारी शक्ति अबाध रहे !

सौदास अपनी लड़की के ही हित का विचार करता है, लेकिन गंगकुमार के हक में यह प्रतिज्ञा बहुत हितकर सिद्ध हुई। देवगण फूल बरसा कर कहने लगे—'हम आपकी निष्काम पितृभक्ति पर मुग्ध हैं। यह प्रतिज्ञा करने में आपको कठिनाई मालूम होती या किसी कामना से प्रेरित होकर प्रतिज्ञा करते तो उसका महत्त्व इतना अधिक न होता। यह प्रतिज्ञा करके आपने अपने को जगत् का पिता बना लिया है। आपने भारत-

भूमि को कल्याणमयी बना दिया है। यह भीषण प्रतिज्ञा करने से आप आज से 'भीष्म' कहलाएँगे।'

इस प्रतिज्ञा के कारण भीष्म धन्य है या भारत धन्य है? हमारी समझ में इस के लिए केवल भीष्म ही धन्यवाद के योग्य नहीं, भारत भी अवश्य धन्यवाद के योग्य है। चीन में एक ऐसी प्रथा है कि जब पुत्र कोई उत्तम काम करता है तो उसके पिता को उपाधि दी जाती है। इस प्रथा के कारण संतान-परम्परा के सुधार की प्रेरणा मिलती है। जो व्यक्ति उपाधि लेना चाहता है वह अपने पुत्र को सुधारता है। भारत देश आपका कुछ लगता है? अर्थात् आपका कोई संबंधी है या नहीं? आज भीष्म नहीं हैं, लेकिन भारतीय होने के नाते आप भारत की संतान तो हैं न? भीष्म ने अपने अपूर्व त्याग द्वारा भारत का गौरव बढ़ाया, ऐसा गौरव जिस की उपमा संसार में मिलना कठिन है। मगर भारत की संतान होकर भी आप भारत के लिए कितना त्याग करते हैं? जिन भारतीयों को भारतीय खान-पान और रहन-सहन बुरा मालूम होता है, उन्हें भारत का सपूत किस प्रकार कहा जा सकता है? ऐसे लोग भारत के कपूतों में ही गिने जा सकते हैं। भारत के किसी अंगरेज गवर्नर से पगड़ी बाँधने के लिए कहा जाए तो क्या वह राज़ी होगा? वह कहेगा—'हम अपने देश का गौरव घटाने यहाँ नहीं आए हैं, किन्तु अपने देश के हित के लिए भारत पर शासन करने आए हैं।' मगर

आप तो भारत में रहते हुए भी अंगरेजों की वेष-भूषा की भद्दी नकल करने में अपना गौरव समझते हैं। आपको भारतीय वस्त्र पसंद नहीं, भारतीय भोजन पसंद नहीं, भारतीय आदर्श पसंद नहीं और भीष्म का कार्य भी पसंद नहीं है। ऐसा करके आप अपनी मातृभूमि की इज्जत नहीं खो रहे हैं?

अगर आप भारतीय हैं—भीष्म की संतान हैं तो कम से कम परस्त्री का ही त्याग करो और भारतीय वस्तुओं से घृणा मत करो। आप अपना कल्याण चाहते हो और सुखमय जीवन बिताना चाहते हो तो भारत की पवित्र परम्परा का महत्त्व समझो, विदेशों का अन्धानुकरण मत करो। इंग्लैंड वालों को अगर इंग्लैंड प्यारा हो तो भारतीयों को भारत प्यारा क्यों न हो? भारतीय होकर भी इंग्लैंड का खान पान रहन-सहन अपनाने तथा फैशन के चक्कर में पड़ जाने से कभी कभी कितना कष्ट उठाना पड़ता है, यह बात एक उदाहरण द्वारा बतलाना ठीक होगा।

किसी आदमी के घर पुराने ढङ्ग की स्त्री है। वह पुराने ढङ्ग का भोजन बनाना जानती है। उसे नई फैशन का भोजन बनाना नहीं आता। पति होटल में भोजन करता है और होटल सरीखा भोजन न बना सकने के कारण स्त्री को टोकता है। कुछ समय तक इसी प्रकार चलता रहा। मान लीजिए, इस कारण से स्त्री पुराने ढङ्ग का भोजन बनाना भी भूल गई। इधर होटल वाले ने भी मना किया। अब

पति पर कैसी बीतेगी ?

इस उदाहरण से आजकल के फैशन की सभी बातें समझी जा सकती है। मुँह पर पाउडर मल कर नाटक-सिनेमा में नाचने वाली स्त्रियों पर जो मुग्ध हो जाता है, उसे भोली और सीधीसादी गृहिणी क्यों अच्छी लगेगी? लेकिन सिनेमा की नटी क्या सुख-दुख में समान भाव से साथ दे सकती है ?

माता गंगा के नाम से गंगकुमार का नाम 'गंगकुमार' पड़ा था। मुनि के समक्ष व्रत धारण करने से उनका दूसरा नाम 'देवव्रत' हुआ और फिर भीषण प्रतिज्ञा करने के कारण तीसरा नाम 'भीष्म' हुआ।

गङ्गकुमार की प्रतिज्ञा सुनकर सौदास एक बार तो दहल उठा! उनकी वीरता और पितृभक्ति देख कर वह चकित रह गया। उसने सत्यवती को बुला कर कहा—'बेटी, गङ्गकुमार ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा की है, इस लिए अब तुम जाओ और गङ्गकुमार की माता बन जाओ।'

सत्यवती को गंगकुमार की प्रतिज्ञाओं का हाल सुन कर अत्यन्त खेद और आश्चर्य हुआ। वह लज्जा के कारण झुक गई। उसे सौदास पर बेहद क्रोध भी हो आया। वह कहने लगी—स्वार्थी पिता! तुमने यह क्या कर डाला! तुम जिसकी माता बनने को मुझसे कह रहे हो वह क्या मेरा नहीं हो गया? मेरे पुत्र के साथ तुमने घोर अन्याय

फँसे कर डाला ! कौन जानता है कि मेरे संतान होगी भी या नहीं होगी ? परन्तु पहले से इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने को जो तैयार हो सकता है, उस पर अविश्वास करने का क्या कारण था ? आखिर तो तुम धीवर ही होन ! महाराज ने पहले मुझसे ही बातचीत की थी। मैंने सोचा—मैं जिन पिता के घर रहती हूँ, जो मेरा पालन-पोषण कर रहे हैं, उनकी आज्ञा के बिना विवाह करना उचित नहीं है। लेकिन तुमने गंगकुमार से ऐसी प्रतिज्ञाएँ करवा डालीं ! तुमने मेरा हित देखकर ही सब कुछ किया है, पर दूसरे का भी थोड़ा बहुत तो देखना चाहिए था ! तुमने मुझे मुँह दिखलाने योग्य भी नहीं रक्खा ! मैं कौन-सा मुँह लेकर महाराज के पास जाऊँगी ? पिताजी, आपने घोर अनर्थ कर डाला। मैं अपने जीवन में कैसे शान्ति अनुभव कर सकूँगी ? मेरा हृदय सदैव संताप की आग में जलता रहेगा। आपने मेरे जीवन में काँटे बो दिये !

सत्यवती केवल नाम से ही सत्यवती नहीं वरन् काम और विचार से भी सत्यवती है। वह सत्य का विचार कर रही है। वह सौदास से कहती है—'गंगकुमार जैसा पुरुष तुम्हारे द्वार पर आया और तुमने ऐसी प्रतिज्ञा करवाई ! यह बड़ा ही अनुचित हुआ है। मेरी समझ में नहीं आता कि जो ऐसी अनीति घटना घट गई है उसे किस प्रकार सुलझाऊँ ? मेरे हृदय का दाह कैसे शान्त हो सकता है ?'

इसके बाद सत्यवती ने कुमार गंग से कहा—'आप मुझे माता कहते हैं परन्तु वास्तव में आप मेरे पिता होने योग्य हैं। आपके त्याग के कारण मेरा मस्तक झुक गया है। मै लज्जा के अथाह जल में डूबी जा रही हूँ। आपने स्वेच्छा से—आत्मा की आन्तरिक प्रेरणा से इस प्रकार की प्रतिज्ञा की होती तो मुझे कोई संताप न होता। मगर आपने जो भीषण प्रण किया है उसका निमित्त मैं हूं। ऐसी दशा में मै किस तरह आपके साथ चलूं? आप स्वयं ब्रह्मचार्य पाल रहे हैं फिर इस झमेले मे क्यों पड़े? आप ब्रह्मचर्य पाल सकते है और पालने की प्रतिज्ञा कर चुके है, परन्तु मै ब्रह्मचर्य नही पाल सकती। इसी बात का यह झगड़ा है।'

भीष्म सत्यवती की पश्चात्तापयुक्त वाणी सुनकर आश्चर्य करने लगे। उन्होंने मन ही मन सोचा—कहाँ सौदास और कहाँ सत्यवती? दोनों की प्रकृति में कितना महान् अन्तर है? वास्तव में सत्यवती कौरव-कुल की माता होने योग्य है। पिताजी की पसंदगी अनुचित नहीं है।

उन्होंने सत्यवती से कहा—माता, आपका हृदय बहुत उत्तम है। मुझे आश्चर्य है कि आपका जन्म धीवर के कुल में कैसे हो सकता है? आपका हृदय किसी भी उच्च कुल की सुसंस्कृता महिला से हीन नहीं है। यद्यपि आपका कथन अयथार्थ नहीं कहा जा सकता, फिर भी आप मेरा परिश्रम निष्फल नहीं करेंगी। आप चाहे चलें या न चलें, मै प्रतिज्ञा कर चुका

है और इस जीवन के साथ ही उसका अन्त होगा। मैं न राज्य करूँगा और न विवाह करूँगा। अगर आपकी मुझ पर कृपा है तो आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। आप मेरे साथ चलिए और पिताजी का कष्ट मिटाइए। आप जैसी उत्तम माता की मौजूदगी में राज्य करने का तो कोई प्रश्न ही उपस्थित न होगा।'

सत्यवती अपने संकोच को अभी तक नहीं जीत सकी थी। लेकिन उसने कहा—पुत्र, कौन जाने मैं पुत्र कब जनूँगी, या नहीं जनूँगी, परन्तु तुम्हारा जैसा महापुरुष मुझे माता कहता है, यह मेरा परम सौभाग्य है। तुम-सा पुत्र पाकर कौन निहाल न हो जाएगी ? जिस कुल में तुम्हारे जैसे उत्तम पुरुष विद्यमान हैं, उसके साथ जुड़ना क्या कम सौभाग्य की बात है ? मैं उसमें जुड़ने को तैयार हूँ।

भीष्म ने सत्यवती से रथ में बैठ जाने को कहा। सत्यवती रथ में बैठ गई। सत्यवती को जाते देख नौगम्न के आँसू बहने लगे। पिता से दूर होने के विचार से सत्यवती भी रोने लगी। उसी समय भीष्म के पास आकर नौगम्न ने कहा—गंगकुमार ! आपका अनुमान सत्य है। मैं सत्यवती का सिर्फ पालक पिता हूँ, जन्मदाता पिता नहीं।

नौगम्न ने अब तक बड़े यत्न से जो भेद छिपा रक्खा था, आज खोल दिया। सत्यवती और भीष्म—दोनों आश्चर्य करने लगे।

सत्यवती ने सोचा था—'जिसका हृदय इतना मलिन है, जो दूसरे के न्यायसंगत अधिकार को भी सहन नहीं कर सकता और केवल अपना ही अपना अधिकार चाहता है, उस पिता से मेरा जन्म कैसे हुआ ? अपनी संतान के स्वार्थ के लिए दूसरों के हक को हड़प लेना उत्तम पुरुषों का कर्त्तव्य नहीं है।' इस आशय की बात उसने सौदास से पहले कह भी दी थी।

सौदास मच्छीमार है। अपने तुच्छ लाभ के लिए मछलियों के गले में काँटा फँसाना इसका काम था। इस कारण अपनी संतान के हित के लिए उसने दूसरे की संतान का हित भुला दिया। दूसरे की संतान का हित न देखने के कारण सत्यवती ने उसे फटकार भी बतलाई है। परन्तु सत्यवती के साथ आप भी क्या सौदास को बुरा कहेंगे ? सौदास ने कम से कम अपनी संतान का हित तो देखा है ! आप तो अपने स्वार्थ के सामने अपनी संतान के हित को भी नष्ट करने से नहीं चूकते ! कुछ हजार रुपये गिना कर अपनी कन्या को बूढ़े के गले मढ़ देने वालों के साथ इस मच्छीमार की तुलना तो करो ! अपनी संतान के हित के लिए दूसरों का हक छीनने वाला अगर कोली—मच्छीमार—है तो उन्हें क्या कहना चाहिए जो अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए अपनी औरस सन्तान का हक़ छीन लेने में लज्जित नहीं होते।

सौदास फिर कहने लगा—'पुत्री ! तू यहाँ इतनी बड़ी

हुई, मगर तू ने आज तक किसी को मेरे ऊपर आक्षेप करते नहीं सुना है। जैसे अगरबत्ती जल कर अपनी सुगंध देती है, इसी प्रकार तू ने भी समय पर अपनी सुगन्ध फैलाई है। तू मेरे कार्य से प्रसन्न नहीं हुई। सच्ची बात तू ने कही है। पर तुझे यह पश्चात्ताप है, कि ऐसे मलिन हृदय से मेरा जन्म कैसे हुआ? लेकिन बेटी, तू पश्चात्ताप मत कर। तू इस हृदय से उत्पन्न नहीं हुई है।

करता हूँ, मगर मैंने कोई गुप्त पाप नहीं किया। फिर मेरे यहाँ संतान क्यों न हुई? मै अपनी सारी जिन्दगी के कार्यों की आलोचना करता हुआ चिन्ता में डूबा था कि इतने में मैंने एक आश्चर्य देखा। मैंने देखा कि आकाश से फैंकी हुई एक कन्या चली आ रही है। वह कन्या पास ही, घास की एक क्यारी में गिरी। मै भागा हुआ उस क्यारी के पास गया और कन्या को देखकर मुझे ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे जन्मांध को अचानक आँख मिल गई हो। मैंने सोचा—कदाचित् मेरी पत्नी किसी कन्या को जन्म देती तो वह इतनी सुन्दर तो न होती। यह कितनी खूबसूरत कन्या है? मै इसे पराई न समझकर, अपनी ही समझूँगा। यह स्वर्ग लोक से मानों मेरे लिए ही आई है।'

मै कन्या को अनमोल द्रव्य की भाँति उठाकर चलने को तैयार हुआ ही था कि मुझे दिव्य-वाणी सुनाई दी कि—'यह कन्या एक विभूति है। तू इसका जितना हित करेगा, तेरे लिए अच्छा ही होगा। यह कन्या रत्नपुरी के रत्नांगद राजा की रत्नवती रानी की कन्या है। रत्नांगद के एक शत्रु ने क्रोध करके रत्नांगद की संतान को नष्ट करने के लिए उसे हरण किया था। मगर कन्या समझ कर उसने मार डालना उचित नहीं समझा। वह इसे यहाँ छोड़ गया है। यह कन्या राजा शांतनु की पत्नी और सम्राट् की माता होगी।

इतना कहकर सौदास भावावेश से गद्गद हो गया।

इसने फिर कहा—'हे गंगकुमार! यही वह कन्या सत्यवती है।'

सौदास के मुख से अपना यह अद्भुत वृत्तान्त सुनकर सत्यवती अचरज में पड़ी हुई कहने लगी—पिताजी! आवेश में आकर मैंने आपके प्रति जो अनुचित शब्द कह डाले हैं, उनके लिए आप क्षमा करें। आपने सदैव मेरा हित किया है। आपने जितना मेरा हित चाहा है शायद सगा पिता भी न चाहता। यह बात दूसरी है कि आपने गंगकुमार से बहुत बड़ी और कड़ी प्रतिज्ञा करवाई है, फिर भी आपके हृदय में किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं था। आपने इसी में मेरा एकान्त हित समझा था।'

सौदास—'बेटी सत्यवती, तू सचमुच सत्यवती है। तूने अपने हित की उपेक्षा करके भी सत्य बात प्रकट कर दी।'

सत्यवती—'मैं आपकी कृपा से ही जीवित हूँ। आपका मुझ पर असीम उपकार है। मैं आपकी चिर-ऋणी रहूँगी। मेरी प्रशंसा करके अब उस ऋण को अधिक न बढ़ाइए।'

सौदास, गंगकुमार की ओर उन्मुख होकर कहने लगा—'कुमार! मेरे यहाँ रहकर सत्यवती ने मेरा बड़ा उपकार किया है। मैं गरीब, इसे क्या तो पहना-ओढ़ा सकता था और क्या खिला-पिला सकता था! मगर इस भोली कन्या ने मुझे किसी चीज के लिए परेशान नहीं किया। मैंने जो कुछ इसके सामने रख दिया, खुशी-खुशी इसने ग्रहण किया। कभी कोई शिकायत नहीं की और न नाक सिकोड़ी। यह सब प्रकार से गुणी और मेरी कन्या ही [illegible] [illegible]

करता हूँ, मगर मैंने कोई गुप्त पाप नहीं किया। फिर मेरे यहाँ संतान क्यों न हुई ? मै अपनी सारी जिन्दगी के कार्यों की आलोचना करता हुआ चिन्ता में डूबा था कि इतने में मैंने एक आश्चर्य देखा। मैंने देखा कि आकाश से फैंकी हुई एक कन्या चली आ रही है। वह कन्या पास ही, घास की एक क्यारी में गिरी। मैं भागा हुआ उस क्यारी के पास गया और कन्या को देखकर मुझे ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे जन्मांध को अचानक आँख मिल गई हो। मैंने सोचा—कदाचित् मेरी पत्नी किसी कन्या को जन्म देती तो वह इतनी सुन्दर तो न होती। यह कितनी खूबसूरत कन्या है ? मै इसे पराई न समझकर अपनी ही समझूँगा। यह स्वर्ग लोक से मानों मेरे लिए ही आई है।'

मै कन्या को अनमोल द्रव्य की भाँति उठाकर चलने को तैयार हुआ ही था कि मुझे दिव्य-वाणी सुनाई दी कि—'यह कन्या एक विभूति है। तू इसका जितना हित करेगा, तेरे लिए अच्छा ही होगा। यह कन्या रत्नपुरी के रत्नांगद राजा की रत्नवती रानी की कन्या है। रत्नांगद के एक शत्रु ने क्रोध करके रत्नांगद की संतान को नष्ट करने के लिए उसे हरण किया था। मगर कन्या समझ कर उसने मार डालना उचित नहीं समझा। वह इसे यहाँ छोड़ गया है। यह कन्या राजा शांतनु की पत्नी और सम्राट् की माता होगी।

इतना कहकर सौदास भावावेश से गद्गद हो गया।

उसने फिर कहा–'हे गंगकुमार! यही वह कन्या सत्यवती है।'

सौदास के मुख से अपना यह अद्भुत वृत्तान्त सुनकर सत्यवती अचरज में पड़ी हुई कहने लगी—पिताजी! आवेश में आकर मैंने आपके प्रति जो अनुचित शब्द कह डाले हैं, उनके लिए आप क्षमा करें। आपने सदैव मेरा हित किया है। आपने जितना मेरा हित चाहा है शायद सगा पिता भी न चाहता। यह बात दूसरी है कि आपने गंगकुमार से बहुत बड़ी और कड़ी प्रतिज्ञा करवाई है, फिर भी आपके हृदय में किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं था। आपने इसी में मेरा एकान्त हित समझा था।'

सौदास—'बेटी सत्यवती, तू सचमुच सत्यवती है। तूने अपने हित की उपेक्षा करके भी सत्य बात प्रकट कर दी।'

सत्यवती—'मै आपकी कृपा से ही जीवित हूँ। आपका मुझ पर असीम उपकार है। मै आपकी चिर-ऋणी रहूँगी। मेरी प्रशंसा करके अब उस ऋण को अधिक न बढ़ाइए।'

सौदास, गंगकुमार की ओर उन्मुख होकर कहने लगा–'कुमार! मेरे यहाँ रहकर सत्यवती ने मेरा बड़ा उपकार किया है। मै गरीब, इसे क्या तो पहना-ओढ़ा सकता था और क्या खिला-पिला सकता था? मगर इस भोली कन्या ने मुझे किसी चीज़ के लिए परेशान नहीं किया। मैंने जो कुछ इसके सामने रख दिया, खुशी-खुशी इसने ग्रहण किया। कभी कोई फरमाइश नहीं की और न नाक सिकौड़ी। यह सब प्रकार से मुझे और मेरी पत्नी को सहायता पहुँचाती

रही। इसकी संगति से मुझमें और मेरी पत्नी में सत्य का प्रकाश प्रकट हुआ है। उस सत्य के प्रकाश में मै ने देख पाया कि किसी का गला काट कर अपना पेट भरना उचित नहीं है। तभी से मै ने मछली मारना त्याग दिया और नाव चला कर अपनी आजीविका चलाने लगा। नाव चलाने के कष्टकर और संकटपूर्ण कार्य में भी सत्यवती ने मुझे खूब सहायता पहुँचाई है। यद्यपि मै अपनी नाव द्वारा गरीबों को विना पैसे लिये ही पार उतारता रहा हूँ, फिर भी मुझे पैसे की कभी कमी नहीं रही। मुझे आशा है कि सत्यवती के दिये प्रकाश से सहज ही मेरे जीवन की नाव भी किनारे लग जायगी। और कौरव-कुल की नौका को वह सकुशल पार लगाएगी।'

'हे कुमार! मै ने आपको प्रतिज्ञा के बंधन में बाँधकर बड़ी भूल की है। अब मै नहीं चाहता कि सत्यवती का पुत्र ही राज्य करे और आप राज्य न करें तथा विवाह भी न करें। आपने मेरी प्रेरणा से ही यह प्रतिज्ञा की है, अतएव मैं अपनी प्रेरणा वापिस लेता हूँ और आपको अपनी ओर से प्रतिज्ञामुक्त करता हूँ।'

गंगकुमार ने सत्यवती की ओर उन्मुख होकर कहा—माता, तुम मेरी ही नहीं, सारे संसार की माता होने योग्य हो। तुम्हारी बात सुनकर ही इन पिता के हृदय में परिवर्त्तन हुआ है। भले ही इनका हृदय पलट गया है पर मेरी प्रतिज्ञा " पलट सकती। प्रतिज्ञा करते समय मैंने कोई छूट नहीं

रक्खी है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि संसार के पलट जाने पर भी मेरी प्रतिज्ञा नहीं पलटेगी। क्षत्रिय का प्रण मिथ्या नहीं हो सकता। वह जो प्रतिज्ञा कर चुका, कर चुका। वह फिर पलट नहीं सकती।

गंगकुमार और सत्यवती ने सौदास को यथोचित नमस्कार किया। रथ रवाना हुआ। सौदास की आँखें बरसने लगीं और सत्यवती की भी। जब तक रथ दिखाई दिया, सौदास उसी ओर आँखें गड़ाए रहा।

किसी भी देश और जाति की प्रतिष्ठा एवं अप्रतिष्ठा, उसके अगभूत व्यक्तियों के आचरण पर निर्भर रहती है। एक भारतीय भी अपने उच्चतम आचार से भारत का मुख उज्ज्वल कर सकता है। इसके विपरीत एक भारतीय अपने निन्दनीय आचरण के द्वारा अपनी मातृभूमि का सिर नीचा कर सकता है। एक भीष्म ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके भारतीयों के समक्ष अमर और अनुपम आदर्श उपस्थित किया है। इस आदर्श में आत्मोत्सर्ग की महत्ता है, पितृभक्ति की पवित्र प्रेरणा है, ब्रह्मचर्य का वीरतापूर्ण सन्देश है, विषय-विरक्ति की विज्ञप्ति है। भीष्म के आदर्श त्याग से भारत का गौरव बढ़ा है। यह भारत ही भीष्म का पिता-माता है। आप भी इसी भारत की सन्तान हैं। अगर आप भीष्म की बराबरी नहीं कर सकते तो उनके मार्ग पर धीमी-धीमी गति से अवश्य चल सकते हैं। कम से कम इतना तो कर सकते हैं

कि अपनी मातृभूमि को बदनाम करने वाला कोई कार्य न करें। अगर आप इतना ख़याल रक्खें कि आपके किसी कार्य से भारत की लाज न लुटने पावे, तो भी कुछ कम नहीं है। अगर आप इतना भी कर सके तो भीष्म का चरित सुनना आपके लिये सार्थक हो जाएगा।

सत्यवती, शान्तनु के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी हुई। अचानक सत्यवती को सामने पाकर राजा को विस्मय हुआ। वह सोचने लगे—यह मैं क्या देख रहा हूँ? क्या यह वही सत्यवती है जिसे याचना करके भी मै नहीं पा सका? है तो वही सत्यवती, एकाएक यह यहाँ कैसे?

दूसरी ओर गंगकुमार और मंत्रियों को खड़ा देखकर राजा ने कहा—'मैं यह सब क्या स्वप्न देख रहा हूँ!'

मंत्री—नहीं, महाराज! आप जागृत हैं और स्वप्न नहीं, सत्य देख रहे हैं। जब आपको चिन्तामणि सरीखे पुत्र गंग-कुमार प्राप्त हैं तो आपके लिए कमी किस चीज़ की हो सकती है?

राजा—पहेली मत बुझाओ। स्पष्ट कहो, सत्यवती यहाँ कैसे आई हैं?

मंत्री—कुमार सौदास के घर गये। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि राज्य मै नहीं करूँगा, सत्यवती का पुत्र करेगा। यह प्रतिज्ञा करके कुमार इन्हें ले आये हैं।

राजा—कुमार, यह तुमने क्या गज़ब किया! मैं तो तुम्हारा

ख़याल करके ही मन मसोसे बैठा था।

मंत्री—महाराज ! जो होना था हो चुका है। अब भीष्म की प्रतिज्ञा नहीं टल सकती। ऐसा पुत्र पाने के लिए अपने भाग्य की सराहना कीजिए।

राजा—कैसी विचित्र बात है!

मंत्री—महाराज ! यह विचित्र बात नहीं है। विचित्र बात तो यह है कि कुमार ने धीवर का संदेह निवारण करने के लिए आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा की है।

राजा यह सुनकर व्याकुल हो उठे। उन्हें ऐसी चोट पहुँची, मानों किसी ने हृदय में भाला भौंक दिया हो। फिर कहने लगे—क्या इससे अच्छा यह न होता कि मै स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन करता ! गंगा मुझे छोड़कर चली गई। वह ब्रह्मचर्य का पालन कर रही है—तपस्विनी का जीवन यापन कर रही है। उसने अपने हृदय का हार, अपने सांसारिक जीवन का सार गंगकुमार मुझे उपहार में दिया था। इसकी यह दशा हुई ! और वह भी मेरी दुर्बुद्धि के कारण ! हाय, मै ब्रह्मचर्य पालता तो कौन बड़ी बात हो जाती ! मुझ-सा कामी और गंग-सा धर्मी और कौन मिलेगा? यह पुत्र नहीं, कोई दिव्य शक्ति है, जिसने पुत्र के रूप में मेरे यहाँ अवतार लिया है। मै क्या इसका पिता कहलाने योग्य हूँ? अपने औरस पुत्र के जीवन की सुकुमार भावनाओं का अकाल में ही घात करने वाला ऐसा दुष्ट पिता संसार में दूसरा कौन

होगा? मै कैसा राक्षसी विचार वाला पामर प्राणी हूँ! अरे गंगकुमार! मेरे जैसे दुष्ट के लिए तूने यह क्या कर डाला! मुझे अपने पापों का प्रायश्चित्त क्यों नहीं करने दिया?

शान्तनु की यह स्थिति देखकर गंगकुमार असमंजस में पड़ गए। वह सोचने लगे—मैंने पिताजी को सुखी बनाने के लिए जो किया, उससे तो उनका दुःख ही बढ़ा! इस समय सान्त्वना देने की आवश्यकता है। अतएव वह पिता से कहने लगे—

'पिताजी! आप सोचते हैं कि गंग का राज्य गया और उसे ब्रह्मचारी रहना पड़ेगा, लेकिन क्या राज्य का त्याग और ब्रह्मचर्य का पालन बुरा है? आप ब्रह्मचर्य पालते तो देशतः ही उसका पालन कर सकते थे। लेकिन देशतः पालन करने पर भी जो ब्रह्मचर्य अच्छा माना जाता है, वह अगर पूर्णरूप से पाला जाय तो क्या अधिक अच्छा न होगा? अगर मै किसी शत्रु को जीतकर लौटता तो आपके हर्ष का पार न रहता। पर मै प्रबल कामशत्रु को जीतकर आया हूँ तो आप शोक और संताप क्यों मान रहे हैं? आपकी कृपा और माता की शक्ति से ही मै काम को जीतने में समर्थ हो सका हूँ। अन्यथा उसे जीतना सरल नहीं था।'

आज भारतवर्ष में ब्रह्मचर्य की बड़ी कमी है। ब्रह्मचर्य के अभाव ने प्रजा को निर्बल, निस्तेज, अल्पायु, रोगी और गुलाम बना दिया है। आधुनिक कॉलिजों के अधिकांश विद्या-

थियों के चरित्र की आलोचना सुनकर घोर निराशा होती है। जब शिक्षितों का यह हाल है तो अशिक्षितों का कहना ही क्या है ?

गंगकुमार कहते हैं—'पिताजी, आपको मेरे राज्य-त्याग की चिन्ता है, पर त्याग के लिए भी क्या पश्चात्ताप की आवश्यकता है ? आप और मै त्यागियों के चरणों में मस्तक टेकते हैं, त्यागी को महान् पुरुष मानते है। कुरुवंश में एक से एक बड़े त्यागी हुए हैं। फिर चिन्ता क्यों करते हैं ? मैंने अपने भाई के लिए अगर राज्य त्याग दिया तो कौन-सा बड़ा त्याग कर दिया है ? आपकी इस चिन्ता से तो भरत के लिए राम का राज्य त्यागना भी बुरा समझा जाएगा। 'मै' और 'मेरा' को लेकर ही संसार के सारे झगड़े खड़े होते हैं। अपने भाई के लिए त्याग करना कोई त्याग ही नही है। राज्य भाई का होगा और भाई मेरा होगा, तो राज्य भी मेरा ही रहेगा। इसमें खेद का कोई कारण नहीं है। मैंने जो कुछ त्याग किया भी है, वह पितृभक्ति की प्रेरणा से ही किया है। अगर आप पितृभक्ति को हेय न मानते हों तो चिन्ता का त्याग कीजिए और इन माता के साथ विवाह करके मुझे गंगा माता की गोद के बदले माता सत्यवती की गोद में रखिए।'

गंगकुमार के प्रिय शब्दों ने शान्तनु को आश्वसन दिया। उनकी चिन्ता कम हो गई। उन्होंने सत्यवती के साथ विवाह किया और आनन्द से समय व्यतीत करने लगे।

आज के बहुत से लोग कहा करते हैं—भीष्म की कथा पौराणिक कथा है और पौराणिक कथा काल्पनिक होती है—सत्य नहीं। हम तो सिर्फ इतिहास की बात ही सच्ची मानते हैं।

वास्तव में धर्मकथा को हम भी इतिहास नहीं कहते, क्योंकि धर्मकथा के सामने इतिहास तुच्छ है। हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि आप धर्मकथा को इतिहास के रूप में ही मानें, लेकिन धर्मकथा से निकले हुए सत्य के प्रकाश को तो स्वीकार करें। धर्मकथा में बतलाए हुए त्याग के अनुसार आप त्याग न कर सकें तो धर्मकथा या त्याग को तो बुरा न कहें।

मेवाड़ के इतिहास में दो घटनाएँ ऐसी मिलती हैं, जो भीष्म के त्याग की और कृष्ण द्वारा रुक्मिणी की रक्षा की अधिकांश में पुनरावृत्ति-सी जान पड़ती है। मेवाड़ के इतिहास में भीष्म के त्याग की थोड़ी-बहुत समता करने वाली घटना चूड़ा का राज्यत्याग है। और जैसे कृष्ण ने रुक्मिणी की रक्षा की थी उसी प्रकार राजसिंह ने रूपनगर की राजकुमारी की रक्षा की थी। कदाचित् कोई भीष्म के त्याग को काल्पनिक घटना मानता है तो चूड़ा का त्याग तो ऐतिहासिक है! भीष्म-सा त्याग नहीं कर सकते तो चूड़ा-सा त्याग ही करो, मगर काल्पनिकता का बहाना करके त्याग से बचने का प्रयत्न मत करो। ऐसा करने से भीष्म का कुछ बिगाड़ नहीं होगा, तुम्हारी जिंदगी ही बर्बाद होगी।

वही बात हमारे काम की है जो धर्म के साथ संगत है। धर्म के साथ जिसकी संगति नहीं है उससे हमें कोई प्रयोजन नहीं॥ गंगकुमार ने राज्य का अधिकार भी त्यागा था और ब्रह्मचर्य भी स्वीकार किया था। चूड़ाजी ब्रह्मचर्य का पालन न कर सके, फिर भी उन्होंने जो त्याग किया उसका मूल्य कुछ कम नहीं है। पिता की साधारण तौर पर हँसी में कही हुई बात से अपने आपको राज्याधिकार से वञ्चित कर लेना, भाई के राज्य का प्रबंध करना और राज्य की सारी बागडोर हाथ में होते हुए भी विमाता के संदेह के कारण राज्य की सीमा से बाहर निकल जाना, कोई सरल बात नहीं है। चूड़ाजी के इस प्रकार चले जाने पर राम की भी याद आ जाती है। राम चाहते तो कैकेयी को घुड़की बता सकते थे कि मेरे अधिकार का राज्य छीनने वाली तुम कौन होती हो? लेकिन सोच में पड़े हुए पिता को चिन्तामुक्त करके राम वन को चल दिये। इसी प्रकार चूड़ाजी भी माता को टरका सकते थे कि राज्य मेरा है, उस पर मेरा अधिकार है, तुम दखल देने वाली कौन हो? अगर राम और चूड़ाजी अपनी-अपनी सौतेली माताओं को ऐसा उत्तर देते तो वह कुछ भी नहीं कर सकती थीं। परन्तु उन्होंने ऐसा नही किया।

चूड़ाजी की बात ऐतिहासिक है और भीष्म की कथा धर्मशास्त्र की है। धर्मशास्त्र की यह कथा ऐतिहासिक हो तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है? इस कथा में [illegible]

ऐसी वस्तु नहीं है जो उसकी ऐतिहासिकता का विरोध करती हो। फिर भी मेरा कहना तो यह है कि धर्मकथा को इतिहास की दृष्टि से न देखकर आदर्श की दृष्टि से देखना चाहिए। हमें देखना चाहिए कि भीष्म के आदर्श ने जगत् की कुछ भलाई की है या नही ? और कोई बुराई तो उत्पन्न नहीं की ? किसी भी बात के असली आदर्श पर पहुँचना चाहिए और वही आदर्श अपनाना चाहिए जिससे स्थायी शांति प्राप्त हो सके। यही बात एक उदाहरण द्वारा समझिए।

एक बादशाह ने किसी अपराधी को फाँसी की सज़ा दी। अपराधी ने सोचा—अब मैं मौत का शिकार होना ही चाहता हूँ, फिर मन की क्यों न निकाल लूँ ? यह सोच कर उसने बादशाह को खूब गालियाँ सुनाई। यद्यपि बादशाह अपराधी द्वारा दी जाने वाली गालियाँ सुन रहा था, मगर जिस भाषा में वह गालियाँ दे रहा था, बादशाह वह भाषा नहीं समझता था। बादशाह के दो वज़ीर वहीं मौजूद थे और वे अपराधी की भाषा समझ रहे थे। बादशाह ने एक वज़ीर से पूछा—यह क्या कह रहा है ?

वज़ीर ने कहा—यह आपको दुआ दे रहा है। कहता है कि वास्तव में मैंने अपराध किया था। इस लोक में दण्ड से बच भी जाता तो परलोक मे दोहरा दण्ड भोगना पड़ता। अच्छा हुआ, बादशाह ने मुझे दण्ड देकर परलोक में ज्यादा दंड भोगने से बचा लिया। बादशाह अमर रहे !

यह सुन कर बादशाह बहुत खुश हुआ। उसने कहा—अपराधी को सज़ा देने का उद्देश्य यही है कि उसका हृदय बदल जाय। जब इसका हृदय बदल गया है तो इसे फाँसी लगाने से क्या लाभ है ?

बादशाह ने उसकी सजा माफ़ कर दी। अपराधी प्रसन्न होता हुआ वहाँ से चला गया।

दूसरा वज़ीर नाराज होकर कहने लगा—मालिक के सामने इस प्रकार झूठ बोलने का काम इन्हीं से बन सकता है। ऐसा विश्वासघात दूसरा नहीं करेगा।

बादशाह ने पूछा—बात क्या है ?

दूसरे वज़ीर ने कहा-वह अपराधी पापी आपको मनचाही गालियाँ दे रहा था। फाँसी की सज़ा पा चुकने के बाद भी उसे पश्चात्ताप नहीं था। फिर भी इन्होंने झूठी बात कहकर उसे छुड़ा दिया।

बादशाह दोनों वज़ीरों पर विश्वास करता था। वह असमंजस में पड़ गया कि किसकी बात सही और किसकी गलत समझी जाय ? पहले की बात मान कर वह अपराधी को मुक्त कर ही चुका है। अगर दूसरे की बात सही मानता है तो उसका क्रोध बढ़ता है। स्वयं बादशाह अपराधी की भाषा नहीं समझता और दोनों ही वजीर उसकी दृष्टि में विश्वासपात्र हैं। अब बादशाह किसका कहना सच माने और किसका झूठ ?

बादशाह बुद्धिमान् था। उसने दूसरे वजीर से कहा—भले ही पहले वजीर की बात झूठी हो पर वह दया-उत्पन्न करने वाली है। और तुम्हारी बात चाहे सच ही हो कि अपराधी मुझे गालियाँ दे रहा था, तब भी वह क्रोध-उत्पन्न करने वाली है। इसकी बात मान कर मैंने अभियुक्त को छोड़ दिया है। तुम्हारी बात मानूँ तो उसे फिर पकड़वा कर सजा दूँ! अतएव तुम्हारी बात भले ही सच हो, पर मानने योग्य बात इसकी है।

मनुष्य की ज्ञानशक्ति परिमित है। कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य यह दावा नहीं कर सकता कि वह अभ्रान्त है और उसने कभी कोई भूल नहीं की। एक बार नहीं, अनेक बार मनुष्य भ्रम मे पड़ कर दूसरे को अनुचित दंड दे देता है। अपराधी साफ़ बच जाता है और निरपराध मारा जाता है। चोरी आदि जो भी अपराध किये जाते हैं वह सब तृष्णा-लोभ के वश होकर ही किये जाते है। इसमें आत्मा का दोष नहीं है। लेकिन मनुष्य अपूर्ण है। दंड देने वाले लोग, तृष्णा एवं लोभ मे पड़कर अपराध करने वालों को तो दंड देते हैं परन्तु यह नहीं देखते कि अपराधी ने जिन कारणों से अपराध किया है, वह कारण हम में भी मौजूद है या नहीं? अपराधी ने मैली चोरी करके किसी को लूटा है और हम सफेद चोरी करके तो किसी को नहीं लूटते हैं? बसे हुए सुन्दर ग्राम को बम पटक कर नष्ट कर देना क्या अपराध

नहीं है ? (परमाणु बम के द्वारा हिरोशिमा जैसे बड़े नगर को धूल में मिला देना और लाखों निरपराध बालकों, स्त्रियों एव नागरिकों की हत्या कर डालना एक ऐसा भयानक अपराध है, जिसका मुकाबिला भीषण से भीषण हत्यारे का अपराध भी नहीं कर सकता। मगर आज ऐसा करने वाले विजेता अपराधी पराजित देशों के अपराधों का हिसाब लगाने बैठे है और उन्हे सज़ा सुना रहे हैं! ऐसे न्याय की बलिहारी है!—सम्पादक)

जैसे बादशाह अपराधी की बात नहीं समझता था, उसी प्रकार आप भी नही समझते कि कौन-सा धर्म सच्चा है और कौन-सा नहीं? ऐसी दशा में आपको यही देखना चाहिए कि किस धर्म से शांति मिलती है? किस धर्म से मेरी और दूसरों की भलाई हो सकती है? इस प्रकार का विचार करके धर्म को स्वीकार करोगे और उसका अनुगमन करोगे तो धर्म से अवश्य ही शांति प्राप्त होगी। अन्यथा धर्म के लिए सिरफुटौवल होने पर शांति कोसों दूर भाग जाती है।



१३

भीष्म की वीरता

——::::()::::——

सत्यवती के साथ विवाह करके राजा शान्तनु आनन्द-पूर्वक रहने लगे। समय पाकर सत्यवती के उदर से चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्रों का जन्म हुआ। कुछ दिनों के पश्चात् शांतनु ने शरीर त्याग दिया। महात्मा भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चित्रांगद को राज्यासन पर बिठलाया और स्वयं राजकाज देखने लगे। चित्रांगद बहुत पराक्रमी राजा हुए परन्तु किसी गंधर्व के साथ युद्ध करते हुए परलोक सिधारे। उनकी अंत्येष्टि क्रिया करके भीष्म ने विचित्रवीर्य को राजा बनाया। विचित्रवीर्य भी सुन्दर और शक्तिशाली था। भीष्म पूर्ववत् राज्य का प्रबंध करते रहे। विचित्रवीर्य नम्र था और वह भीष्म की आज्ञा का ही अनुसरण करता था।

विचित्रवीर्य राजा हो चुका था, फिर भी उसका विवाह नहीं हुआ था। आज की तरह उस ज़माने में विवाह के लिए

जल्दबाज़ी नहीं की जाती थी। लड़का कमाने-खाने योग्य हो या न हो, वयस्क हो गया हो या न हुआ हो, उसे विवाह की आवश्यकता प्रतीत होती हो या नहीं, आजकल के माता-पिता का प्रथम कर्त्तव्य उसे विवाह के बंधन में जकड़ देना है। यही कारण है आज की प्रजा अशक्त होती जाती है।

विचित्रवीर्य को वयस्क और विवाह के योग्य देखकर भीष्म ने उसका विवाह कर देने का विचार किया। उन्हीं दिनों काशीनरेश ने अपनी अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नामक तीन कन्याओं का स्वयंवर रचा और सब राजाओं को निमंत्रण दिया। परन्तु संभवतः यह सोचकर कि सत्य-वती धीवर की कन्या है और विचित्रवीर्य उसी का पुत्र है, विचित्रवीर्य को आमंत्रण नहीं दिया। काशीराज के द्वारा आमत्रण न मिलना भीष्म ने कुरुवंश का अपमान समझा। तेजस्वी पुरुष कठिन से कठिन विपत्ति सह सकते हैं पर अपने कुल का अपमान सहन नहीं कर सकते। भीष्म विचार करने लगे—'मेरे रहते कौरव कुल का अपमान हो और मैं चुप बैठा रहूँ, यह नहीं हो सकता। मुझे इस अपमान का प्रतीकार करना चाहिए।'

भीष्म, सत्यवती के पास पहुँचे। सत्यवती को यथोचित प्रणाम करके उन्होंने कहा—भाई विचित्रवीर्य विवाह के योग्य हो गया है।

सत्यवती—जिसने तुम-सा समर्थ भाई पाया है उसके

विवाह की क्या चिन्ता करना है। जो उचित समझो, करो।

भीष्म—यह तो ठीक है। लेकिन काशीराज ने अपनी कन्याओं के स्वयंवर का निमंत्रण नहीं भेजा।

सत्यवती—नहीं भेजा तो न सही। कन्याओं का अकाल थोड़े ही है!

भीष्म—नहीं, अकाल नहीं पड़ा है, पर यह कौरव कुल का अपमान है। मै यह अपमान सहन नहीं करूँगा। मै बिना निमंत्रण ही स्वयंवर में जाऊँगा और इस अपमान का आना-पाई समेत बदला लूँगा।

सत्यवती—आप अकेले होंगे और वहाँ राजाओं का जमघट ोगा।

भीष्म—(हँसकर) आपका पुत्र अकेला ही काफ़ी है। राजा लोग तभी तक अपनी आभा दिखला सकते हैं जब तक कुरुकुल का सूर्य मौजूद नहीं है। मै अकेला ही सब की खबर ले सकता हूँ।

सत्यवती सहमत हो गई। बोली—ऐसी ही इच्छा है तो जाओ। तुम्हारा कल्याण हो।

भीष्म रथ में सवार होकर अकेले ही काशीराज के यहाँ जा पहुँचे। स्वयंवरमंडप में जहाँ अनेक बलवान् और कुल-वान् नरेश बैठे थे, भीष्म वहीं जा धमके। भीष्म को स्वयंवर-मंडप में आया देखकर राजा लोग सहम गए। आपस में कानाफूँसी करने लगे। किसी ने कहा—भीष्म बिना निमंत्रण

ही यहाँ कैसे आये ? इन्हें आने का अधिकार ही नहीं है।'

दूसरे ने कहा—आज इनकी कलई खुली है ! अभी तक बालब्रह्मचारी कहलाते थे, अब बुढ़ापे में स्वयंवर की शोभा बढाने आये हैं।

तीसरा कहने लगा—विचित्रवीर्य ने इनका अपमान किया है। सोचते होंगे बिना स्त्री के बुढ़ापे में कौन खोज-खबर लेगा ? इसी से अब बुढ़ऊ को विवाह करना सूझा है।

चौथा, जो कुछ समझदार था, कहने लगा—मामला क्या है ? भीष्म ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं कर सकते। फिर इनके आने का उद्देश्य क्या है ?

इस प्रकार राजा लोग तरह-तरह की कल्पनाएं करने लगे और बड़ी उत्सुकता एवं बेचैनी के साथ भीष्म की ओर ताकने लगे।

काशीनरेश की तीनों कन्याएं मण्डप में घूम रही थीं। सब के देखते-देखते अचानक ही भीष्म का रथ स्वयंवर-मण्डप के मध्य में आ खड़ा हुआ। भीष्म के असाधारण तेज के मारे किसी का साहस न हुआ कि वह रथ को रोकता। भीष्म ने गंभीर ध्वनि से गर्जना करते हुए और उपस्थित राजाओं को ललकारते हुए कहा—'मैं कुरुवंशोत्पन्न गंगकुमार, अपने लिए नहीं, वरन् अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए इन तीनों कन्याओं का हरण करता हूँ। जिसमें शक्ति हो, मुझे रोके।'

इतना कहकर भीष्म ने तीनों कन्याओं को रथ में बैठा

लिया। सभी राजा हक्के-वक्के रह गए। किसी को कुछ सूझ ही न पड़ा कि क्या करें और क्या न करें?

भीष्म चाहते तो रथ को निर्विघ्न भगा ले जा सकते थे। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। भीष्म ने विचार किया—विना युद्ध किये इस प्रकार कन्याओं को ले जाना उचित न होगा। इन्हें चुराकर नहीं वरन् जीतकर ले जाने में ही हमारी और हमारे कुल की शोभा होगी। उन्होंने सब राजाओं को चुनौती देते हुए कहा—तुम लोग बहुत हो और मै अकेला हूँ। मै तुम सब के सामने इन कन्याओं को विचित्रवीर्य के लिए ले जाता हूँ। काशीराज ने विचित्रवीर्य को निमंत्रण नहीं भेजा। और इस प्रकार कुरुवंश का अपमान किया है। मै उस अपमान का बदला लेने और कुरुवंश की वीरता का परिचय देने के लिए इन कन्याओं का हरण करता हूँ। अगर तुममें से किसी में शक्ति है तो सामने आओ और अपना बल दिखलाओ। अगर तुम जीत जाओ तो इन कन्याओं को ले जाना, अन्यथा मैंने तो अपना पुरुषार्थ बतला ही दिया है।

भीष्म की चुनौती सुन कर कन्याएँ सोचने लगीं—यह कौन वीर पुरुष है, जिसने हमें रथ में विठला कर भी दाव पर चढ़ा दिया है। यह हमें अपने लिए तो ले नहीं जा रहा है, जिसके लिए ले जा रहा है वह कैसा वीर होगा? इस प्रकार के संकल्प-विकल्प में पड़ीं वह कन्याएँ भय से काँपने लगीं।

भीष्म की ललकार सुनकर अन्य राजाओं का वीर रस

भी जाग उठा। वह कहने लगे—तुम भाई के लिए कन्याएँ ले जाने की बात कहते हो। अगर यह सच है तो अपने भाई को ही क्यों न भेज दिया ? भाई को भेजते तो हम उसे मज़ा चखाते। ब्रह्मचारी होकर इस झमेले में पड़ने की तुम्हें क्या जरूरत थी ? विवाह नही करना था तो इन कन्याओं का स्पर्श ही क्यों किया ? लो, अब करो सामना, देखते है तुम्हारी वीरता !

इस प्रकार कहकर राजा लोग एक ही साथ भीष्म पर वाण वरसाने लगे। भीष्म ने सारथी से कहा—मेरे रथ को चक्र की तरह गोल घुमाओ। भीष्म राजाओं के चलाए वाणों को फुर्ती के साथ काटते जाते और समय पाकर बीच-बीच में प्रहार भी करते जाते थे। उनके शत्रुओं को उनके रथ का अदाज ही नहीं वेठता था कि वह कब किधर आता-जाता है ! सब राजा भीष्म की वीरता और चतुरता देखकर विस्मित हो गए। कहने लगे—बुढ़ापे में इसका यह हाल है तो जवानी में यह कितना वीर रहा होगा ? कई आपस में कहने लगे—इस बूढ़े को पराजित करना ब्रह्मचर्य की शक्ति को पराजित करना है और ऐसा करना संभव नहीं जान पड़ता। इस ब्रह्मचारी से युद्ध छेड़कर भूल की है। इसमें ब्रह्मचर्य का अद्भुत वल है। हम नौजवान भी इसका सामना नहीं कर सकते।

इस प्रकार विचार कर कई राजा युद्ध से विरत हो गए;

परन्तु राजा शाल्व, भीष्म से भिड़ पड़ा। उसका कहना था कि हमारे देखते-देखते कन्याओं का अपहरण होना हमारा घोर अपमान है। काशीराज की अम्बा नामक कन्या के साथ शाल्व का मानसिक संबंध भी स्थापित हो चुका था। इस कारण भी वह शान्त नही रह सकता था। वह भीष्म के साथ युद्ध करने लगा। दोनों का घमासान संग्राम हुआ, मानों हथिनी के लिए दो हाथी आपस मे युद्ध कर रहे हों। अन्त में शाल्व पराजित हो गया। वह निराश होकर अपनी राज-धानी को चला गया। अन्य राजागण भी काशीराज की कन्याओं के बदले निराशा और लज्जा का वरण करके अपने-अपने ठिकाने लगे।

युद्ध की भयङ्करता और अपने भविष्य के अनिश्चय के कारण कन्याएँ कॉप रही थीं। भीष्म ने उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा—पुत्रियो! घबराओ मत। मै तुम्हे हस्तिनापुर ले जाऊँगा और वहाँ के राजा विचित्रवीर्य के साथ तुम्हारा विवाह होगा।

पहले तो उन्होंने सोचा—न जाने विचित्रवीर्य कैसा राजा है! फिर यह सोच कर कि कुरु कुल का राजा है तो अच्छा ही होगा, संतोष धारण किया।

हस्तिनापुर के लिए रवाना होते समय भीष्म ने काशी-राज से कहा—तुमने कुरु कुल का जो अपमान किया था, उसका सूद समेत बदला मिल गया या नहीं? हिम्मत हो तो

सामने आओ और अपनी कन्याओं को छुड़ाओ। अन्यथा मैं विजय का शंख बजाता हूँ।

काशीराज भीष्म की भयंकरता देख चुका था। वह इस चुनौती से लज्जित हो गया। नीचा सिर करके उसने उत्तर दिया—'मुझ से यह भूल हो गई।

भीष्म ने कहा—जो हुआ सो हुआ। अब आप विचित्र वीर्य के श्वसुर हैं और इस कारण मेरे लिए भी पिता के समान पूजनीय हैं।

तीनों कन्याओं को लेकर विजय-शंख बजाते हुए भीष्म काशी से हस्तिनापुर आ गये।

जैन कथा के अनुसार तीनों कन्याएँ विचित्रवीर्य को ब्याही गई थीं। परन्तु महाभारत के अनुसार अम्बा नाम की कन्या का विचित्रवीर्य के साथ विवाह नहीं हुआ था। अम्बा का विवाह विचित्रवीर्य के साथ क्यों नहीं हुआ इस सम्बन्ध में महाभारत में एक उज्ज्वल कथा है। भले ही वह कथा जैन ग्रंथों में अथवा अन्य ग्रन्थों में नहीं है लेकिन कथा तो भावदर्शन के लिए होती है। अतएव जैन ग्रन्थों में अथवा अन्य ग्रन्थों में न होने पर भी भावदर्शन के लिए उसकी कल्पना की जा सकती है। कथा तो किसी भाव को सिद्ध करने या उसका सक्रिय रूप दिखलाने का ढांचा मात्र है। कथा में से असली तत्त्व की बात खोज लेनी चाहिए।

भीष्मजी तीनों कन्याओं को तो ले ही आए थे फिर भी उन्होंने विवाह के सम्बन्ध में कन्याओं की स्वीकृति ले लेना

अपना कर्त्तव्य समझा। उन्होंने कन्याओं से कहा—'पुत्रियों ! मुझे इस प्रकार तुम्हें लाने की आवश्यकता नहीं थी। लेकिन अपने कुल के गौरव की रक्षा के लिए मुझे इस झमेले में पड़ना पड़ा। यद्यपि मै विचित्रवीर्य के लिए तुम्हें जीत कर लाया हूँ, फिर भी तुम्हारी स्वतन्त्रता पर आँच नहीं आने देना चाहता। अतएव मैं तुमसे पूछता हूँ—क्या तुम विचित्रवीर्य के साथ विवाह करना चाहती हो ? संकोच और भय का त्याग करके अपने मन की बात स्पष्ट कह देना।'

क्या भीष्म का इस प्रकार प्रश्न करना उनके लिए अपमानजनक है ? आप तो शायद अपनी निज की लड़की से भी यह प्रश्न करना अपना अपमान समझें ! मगर भीष्म नीतिमान् थे ! नीतिकारों का कथन है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता. ।

अर्थात्--जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता क्रीड़ा करते हैं।

यहाँ स्त्रियों की पूजा का अर्थ उन्हे फूल, फल या अक्षत चढ़ाना नहीं है। किन्तु स्त्री का अपमान न करना—सन्मान करना ही उनकी पूजा है। साधुओं की सेवा करने का अर्थ भी यह नहीं कि उनके चरणों में फूल चढ़ाए जाएँ। किन्तु मर्यादा के अनुसार साधुओं का सन्मान करना ही साधुओं की सेवा है। तात्पर्य यह है कि जहाँ स्त्रियों की प्रतिष्ठा होती है, उनका सन्मान होता है, वहाँ दिव्य शक्ति से सम्पन्न पुरुषों का जन्म

होता है। अपमानित, लांछित और दासी समझी जाने वाली स्त्रियों की संतान उन्हीं जैसी होगी।

यद्यपि भीष्म स्त्रीत्यागी थे फिर भी उनके हृदय में स्त्री-जाति के प्रति आदर का भाव था। वह धर्मात्मा और नीतिज्ञ थे। इसी कारण उन्होंने लाई हुई कन्याओं से विवाह के विषय में प्रश्न किया और उनकी सम्मति माँगी।

भीष्म के प्रश्न के उत्तर में अंबिका और अंबालिका ने कहा—'हम स्त्री हैं। आखिर हमें अपना हृदय किसी को सौंपना ही है। हमारा सौभाग्य है कि कुरुवंशी राजा हमारे पति होंगे और आप जैसे परम त्यागी जेठ की सेवा करने का अवसर मिलेगा।'

इस प्रकार दोनों ने विचित्रवीर्य को पति बनाना स्वीकार कर लिया, परन्तु अम्बा के हृदय में दूसरे ही भाव उठ रहे थे। वह नीचा सिर किये चुपचाप बैठी रही। तब भीष्म ने उससे पूछा—राजकुमारी, तुम्हारी क्या इच्छा है?

अम्बा ने कहा—जिस प्रकार आप अपने धर्म का पालन करना चाहते हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने धर्म का पालन करना चाहती हूँ।

भीष्म—ठीक है। तुम अपना धर्म पालने के लिए स्वतंत्र हो पर यह तो बतलाओ कि किस प्रकार अपने धर्म का पालन करना चाहती हो? क्या चाहती हो?

अम्बा—राजा शाल्व ने मेरे पिता से मेरी याचना की थी

और पिता ने उन्हे स्वयंवर के समय का आश्वासन दिया था। वह स्वयंवर में आये और मैंने उन्हे देखकर मन ही मन वरण कर लिया। मेरा विवाह उन्ही के साथ होता पर आप मुझे पकड़ लाये। युद्ध की उस गड़बड़ मे मैं कुछ कह न सकी और भय की मारी आपके साथ चली आई। जब आप धर्म की रक्षा चाहते हैं तो मैं यह बात कैसे छिपाती ? मैं हृदय से उन्हे अपना चुकी हूँ। यद्यपि राजा विचित्रवीर्य सब प्रकार से सुयोग्य हैं और कुरुकुल भी श्रेष्ठ है, तथापि मैं अपने हृदय को कैसे ठगूँ ? अतएव मैं हाथ जोड़ कर राजा शाल्व के पास जाने की स्वीकृति चाहती हूँ। आपने मुझे पुत्री कहा है। मेरे धर्म की रक्षा का उत्तरदायित्व आपके ऊपर आ गया है। इस जन्म मे उन्हे छोड़कर मेरा दूसरा पति नहीं हो सकता। आप सच्चे धर्मनिष्ठ क्षत्रिय हैं, इसलिए मेरे धर्म की रक्षा कीजिए।

आज के लोगों की तरह यदि भीष्म भी होते तो अंबा की बात कौन सुनता ? जिस अम्बा को भीष्म इतनी कठिनाई से लाये, विशेषतः जिसके लिए ही शाल्व ने युद्ध किया था और भीष्म के प्राण सकट मे पड़ गए थे, क्या उसी जीती हुई अम्बा को भीष्म शाल्व के पास चली जाने दे ? भीष्म कह सकते थे— मैं तुम्हें युद्ध मे जीतकर लाया हूँ और तुम्हे विचित्रवीर्य के साथ विवाह करना पड़ेगा। पर भीष्म अन्याय करने वाले नहीं थे। अम्बा की स्पष्ट उक्ति सुनकर उन्हें प्रसन्नता हुई।

उन्होंने सान्त्वना देते हुए कहा—'राजकुमारी, मैं तुम्हारे धर्म-पालन में बाधा नहीं डालना चाहता। तुम प्रेमबंधन में बँधी हो, मैं उसे तोड़ना नहीं चाहता। अगर मैं किसी वृक्ष को जल न दे सकूँ तो उसे काटना भी मेरा काम नहीं है। मैं संतप्त को शांति पहुँचाना चाहता हूँ, दुखी का दुःख मिटाना चाहता हूँ और परोपकार में ही अपना जीवन लगाना चाहता हूँ।'

भीष्म विचारने लगे—'जिसे लोग अबला कहते हैं उस में भी धर्मपालन की प्रबल इच्छा रहती है। यद्यपि विचित्र-वीर्य की तुलना में शाल्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी तुच्छ है और बल-वैभव के लिहाज़ से भी, परन्तु इस कन्या को धन्य है जो इन कारणों से अपने हृदय को नहीं ठगना चाहती। इसके हृदय का अपमान करना धर्म का अपमान करना है। जब मैंने सौदास धीवर का भी अपमान नहीं किया तो यह तो राजकन्या है और कहती है कि मैं तो अपना हृदय शाल्व को समर्पित कर चुकी हूँ। ऐसी दशा में इसके प्रेम और प्रण को भङ्ग करके मैं उस धर्म की जड़ कदापि नहीं काट सकता जिसे मैं कल्पवृक्ष के समान समझता हूँ।

आज कन्या का विवाह वर के साथ किया जाता है या कंचन के साथ? बारह वर्ष की कन्या किसी अयोग्य और विचारशून्य बूढ़े के गले मढ़ दी जाती है तो क्या कन्या की स्वीकृति से? क्या यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि कन्या उस बूढ़े को पसंद करती है या नहीं? कुछ लोगों का

विचार तो यहाँ तक सुना जाता है कि लड़की विधवा हो जाएगी तो क्या बुरा है—ब्रह्मचर्य पालेगी ! यह विचार कितना नीति और धर्म से गिरा हुआ है ! बलात् संयम पलवाना और किसी के अधिकार को लूट लेना श्रावक का कर्त्तव्य नहीं है ! जो स्वयं तो बुढ़ापे में भी नयी दुलहिन लाने से नहीं चूकता और लड़की को विधवा बनाकर ब्रह्मचर्य पलवाना चाहता है, उसके लिए क्या कहा जाए ! यह धर्म नहीं, धर्म की विडम्बना है। स्वार्थी लोग ऐसे कृत्य करके धर्म को लजाते हैं।

इधर भीष्म को देखो। वह दूसरे की कन्याएँ हरण करके लाये हैं। फिर भी विवाह के संबंध में उनकी स्वीकृति ले रहे हैं। वह सोचते हैं कि किसी को दुखी करना धर्म नहीं है।

भीष्म ने अम्बा से कहा—बेटी, तुम ठीक कहती हो। यद्यपि शाल्व के साथ मेरा युद्ध हो चुका है, पर वह उसी समय के लिए था। शाल्व के पास तुम्हें भेज देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

भीष्म ने सारथी को बुला कर कहा—'राजकुमारी अम्बा को शाल्व के पास सुरक्षित पहुँचा दो और लौट कर मुझे सूचना देना। अगर शाल्व कुछ कहे तो उसे चुपचाप सुन लेना। दूसरे को अपना हृदय दे चुकने वाली कन्या को हाथ लगाने का मुझे कोई अधिकार नहीं था।'

शिवाजी के सैनिक किसी सरदार की सुन्दरी स्त्री को

उनके पास ले आये। सैनिकों ने समझा—स्त्री सुन्दरी है, इसे पाकर हमारे स्वामी प्रसन्न होंगे और हमें अच्छा इनाम मिलेगा। उस समय शिवाजी किसी पहाड़ी गुफा में थे और युद्ध से छुट्टी पाकर अपने इष्ट का ध्यान कर रहे थे। सैनिक उस स्त्री को लेकर गुफा की ओर ही गये। शिवाजी जब गुफा से बाहर निकले तो उस स्त्री को देखते ही सैनिकों से पूछा—इस माता को यहाँ क्यों लाये हो? भय से काँपती हुई उस स्त्री से उन्होंने कहा—आप यहाँ किसलिए आई हैं माता?

स्त्री अभी तक काँप रही थी। भय के मारे उसके प्राण सूख रहे थे। पर शिवाजी के मुख से 'माता' संबोधन सुन कर वह सोचने लगी—शिवाजी महाराज जब मेरे पुत्र बन गए हैं तो अब भय की क्या बात रह गई है!

शिवाजी ने अन्त में कहा—पालकी में बिठला कर इन्हें अपने पति के पास पहुँचा आओ। कदाचित् इनके पति कोई बात कहें भी तो सुन लेना, क्योंकि तुमने अपराध किया है। ध्यान रखना, इस माता को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

भीष्म ने अपने सारथी से भी यही कहा। भीष्म के निर्णय से सारथी और वहाँ उपस्थित दूसरे लोगों को अत्यन्त हर्ष हुआ। सब ने भीष्म की सराहना की और मन में उन्हें प्रणाम किया।

सारथी अम्बा को शाल्व के पास ले गया। उसने शाल्व से कहा—'यह राजकुमारी आपको चाहती है, इस कारण

विचार तो यहाँ तक सुना जाता है कि लड़की विधवा हो जाएगी तो क्या बुरा है—ब्रह्मचर्य पालेगी ! यह विचार कितना नीति और धर्म से गिरा हुआ है ! बलात् संयम पलवाना और किसी के अधिकार को लूट लेना श्रावक का कर्त्तव्य नहीं है ! जो स्वयं तो बुढ़ापे में भी नयी दुलहिन लाने से नहीं चूकता और लड़की को विधवा बनाकर ब्रह्मचर्य पलवाना चाहता है, उसके लिए क्या कहा जाए ! यह धर्म नहीं, धर्म की विडम्बना है। स्वार्थी लोग ऐसे कृत्य करके धर्म को लजाते हैं।

इधर भीष्म को देखो। वह दूसरे की कन्याएँ हरण करके लाये हैं। फिर भी विवाह के संबंध में उनकी स्वीकृति ले रहे हैं। वह सोचते हैं कि किसी को दुखी करना धर्म नहीं है।

भीष्म ने अम्बा से कहा—बेटी, तुम ठीक कहती हो। यद्यपि शाल्व के साथ मेरा युद्ध हो चुका है, पर वह उसी समय के लिए था। शाल्व के पास तुम्हें भेज देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

भीष्म ने सारथी को बुला कर कहा—'राजकुमारी अम्बा को शाल्व के पास सुरक्षित पहुँचा दो और लौट कर मुझे सूचना देना। अगर शाल्व कुछ कहे तो उसे चुपचाप सुन लेना। दूसरे को अपना हृदय दे चुकने वाली कन्या को हाथ लगाने का मुझे कोई अधिकार नहीं था।'

शिवाजी के सैनिक किसी सरदार की सुन्दरी स्त्री को

उनके पास ले आये। सैनिकों ने समझा—स्त्री सुन्दरी है, इसे पाकर हमारे स्वामी प्रसन्न होंगे और हमें अच्छा इनाम मिलेगा। उस समय शिवाजी किसी पहाड़ी गुफा में थे और युद्ध से छुट्टी पाकर अपने इष्ट का ध्यान कर रहे थे। सैनिक उस स्त्री को लेकर गुफा की ओर ही गये। शिवाजी जब गुफा से बाहर निकले तो उस स्त्री को देखते ही सैनिकों से पूछा—इस माता को यहाँ क्यों लाये हो? भय से काँपती हुई उस स्त्री से उन्होंने कहा—आप यहाँ किसलिए आई हैं माता?

स्त्री अभी तक काँप रही थी। भय के मारे उसके प्राण सूख रहे थे। पर शिवाजी के मुख से 'माता' संबोधन सुन कर वह सोचने लगी—शिवाजी महाराज जब मेरे पुत्र बन गए हैं तो अब भय की क्या बात रह गई है!

शिवाजी ने अन्त में कहा—पालकी में बिठला कर इन्हें अपने पति के पास पहुँचा आओ। कदाचित् इनके पति कोई बात कहें भी तो सुन लेना, क्योंकि तुमने अपराध किया है। ध्यान रखना, इस माता को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

भीष्म ने अपने सारथी से भी यही कहा। भीष्म के निर्णय से सारथी और वहां उपस्थित दूसरे लोगों को अत्यन्त हर्ष हुआ। सब ने भीष्म की सराहना की और मन से उन्हें प्रणाम किया।

सारथी अम्बा को शाल्व के पास ले गया। उसने शाल्व से कहा—'यह राजकुमारी आपको चाहती है, इस कारण

महाराज भीष्म ने इन्हें आपके पास भेजा है।'

अम्बा सिर नीचा किये कहने लगी—'मैं हृदय से आपका वरण कर चुकी हूँ, अतः आप मुझे स्वीकार करने का अनुग्रह कीजिए। मै जबदस्ती पकड़ी गई थी और रथ में मूर्छित हो गई थी। इस कारण युद्ध के समय कुछ बोल न सकी। मेरा अपराध क्षमा करिये और मुझे स्वीकार कीजिए।'

शाल्व अकड़ने लगा। बोला—भीष्म द्वारा त्यागी हुई स्त्री को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? संसार मुझे क्या कहेगा? जिसका हाथ पकड़ कर भीष्म ने रथ मे बिठला लिया और जिसे अपने घर ले गया, वह स्त्री मेरे लिए त्याज्य है। भीष्म सरीखे बहादुर को छोड़ कर तुम यहाँ आई ही क्यों?

अम्बा—मै आपका वरण पहले ही कर चुकी थी, इसलिए भीष्म को पति नही बना सकती थी। इसके अतिरिक्त क्या आपको विदित नहीं है कि भीष्म ब्रह्मचारी है।

शाल्व—ब्रह्मचारी रहा होगा तब रहा होगा, अब वह ब्रह्मचारी नही है। स्वयंवर में आया और ब्रह्मचर्य नष्ट हुआ। फिर भले ही वह ब्रह्मचारी हो, तुम मेरे काम की नहीं हो।

अम्बा—आप भूल कर रहे हैं महाराज! भीष्म ने अपनी स्त्री बनाने के लिए हमारा हरण नहीं किया था, किन्तु कुल का अपमान हटाने के लिए, अपनी शक्ति दिखाने के लिए और अपने भाई का विवाह करने के लिए ही हम तीनों बहिनों का अपहरण किया था।

शाल्व—अपने लिए न सही, भाई के लिए ही सही। तुम भीष्म की नहीं तो विचित्रवीर्य की हो चुकी। उसकी परित्यक्ता स्त्री को मैं अपनी पत्नी किस प्रकार बना सकता हूँ? मैं ऐसे नीच कुल का नहीं हूँ।

अम्बा—अबला को इस प्रकार दुत्कारना उचित नहीं है। यद्यपि मेरा यह अपराध है कि मैं भीष्म के रथ में बैठ गई और मैंने प्राण नहीं त्याग दिये; लेकिन हस्तिनापुर पहुँचकर भी मैंने आपके सिवाय दूसरे पुरुष का चिन्तन नहीं किया है। यद्यपि विचित्रवीर्य का वैभव आपसे कम नहीं है, पर मैं आपके सिवाय दूसरे को नहीं चाहती थी। मैं आप पर ही अनुरक्त थी। इसलिए आप मुझे अपने यहाँ स्थान दें। मेरा तिरस्कार न करें। मैं हस्तिनापुर से चली आई हूँ। अब वहाँ लौटकर कैसे जा सकती हूँ? और पिता के घर जाने का मुझे अधिकार ही क्या है? आप मुझे जिस तरह रक्खेंगे, रहूँगी। जो देंगे वही खाऊँगी। पर मेरा तिरस्कार न कीजिए।

शाल्व—तुम्हारा कहना अनुचित नहीं है देवी, और खाने पीने की मेरे यहाँ कमी भी नहीं है। लेकिन तुम्हें रखने से मेरा अपमान होगा। मैं अपमान नहीं सह सकता और इसी कारण तुम्हें रखने में असमर्थ हूँ।

शाल्व का उत्तर सुनकर अम्बा घबरा उठी। वह सोचने लगी—अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मेरे लिए अब कोई उपाय नहीं है। केवल एक ही चारा है कि मैं क्षत्रियों का मद

उतारने वाले परशुराम की शरण में जाऊँ और उनसे प्रार्थना करूँ। वही किसी को समझाएँगे। उनमें भीष्म को भी समझाने की शक्ति है और शाल्व को भी वे समझा सकते है।

अन्त में अम्बा परशुराम के पास पहुँची। उसने सारा वृत्तान्त सुनाया। परशुराम ने कहा—शाल्व अयोग्य और मिथ्याभिमानी है। वह मेरे योग्य वीर नही है। मै उससे तो कुछ नहीं कह सकता, लेकिन तेरा विवाह भीष्म से कराऊँगा।

अम्बा—लेकिन भीष्म तो बालब्रह्मचारी हैं।

परशुराम—इसके लिए चिन्ता मत कर। तुझे हाथ लगाते ही भीष्म का ब्रह्मचर्य चला गया। उसमें ऐसी शक्ति नहीं कि मेरे कहने पर भी तेरे साथ विवाह न करे। कौन ऐसा क्षत्रिय है जो मेरे आदेश की अवज्ञा करने का साहस करे?

परशुराम ने अम्बा का पक्ष लेकर भीष्म के साथ उसका विवाह कराने का प्रण किया है और भीष्म ब्रह्मचारी रहने का प्रण कर चुके हैं। अब देखना चाहिए, किसका प्रण पूरा होता है? मगर इस कथा को हम यहीं समाप्त कर देते हैं।

